कुंआरी सलीब

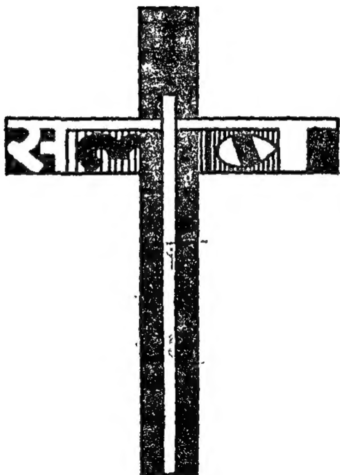
□ प्रकाश माथुरी

राजस्थान साहित्य अकादमी प्रकाशन

हिन्दी उपन्यास १९८० ई०



कुंआरी



प्रकाश माथुर

□ कुंआरी सलीब (उपन्यास)

* प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
* मुद्रक : मेसर्स महावीर प्रिंटिंग प्रेस, उदयपुर
* संस्करण : १९८० ई०
* मूल्य : पन्द्रह रुपए नव्वे पैसा मात्र
* आवरण : राजाराम व्यास

© KUNWARI SALEEB (Hindi Novel)
BY
PRAKASH MADHURI

◇ PRICE Rs 15.90 only

अपनी बात

इस उपन्यास का सृजन हिन्दी संस्कृति के क्षय के कारणों को खोजते हुए, मानस में हुआ। इस पर भारत के उन सभी परिवारों की छाया है जो एक साथ पूर्व और पश्चिम को जीना चाहते हैं। पाठकों को उपन्यास सम्भव है बड़ा अटपटा व काल्पनिक लगे, किन्तु मैं पूर्व-पश्चिम की इस कशमकश को अपने चारों ओर जीता-जागता देखता रहा हूं, वर्षों से। शायद वे ही वर्ष इस उपन्यास के प्रसव वर्ष बन गए थे। मैंने सुबोध, नीता को महानगरों में देखा है तो दिवाकर और गीता को भी वहीं। और अब तो ये लोग गांवों में भी आगए हैं।

परिवार के परिवार इसी संक्रमित परिवेश में जी रहे हैं।

उपन्यास का दिवाकर संसार की ओढ़ी हुई शराफत से ऊबा हुआ वह हर इन्सान है जो अपनी औकात से कहीं अधिक शराफत का नकली मुखौटा पहिन लेता है, पर उससे उसे न उतारते बनता है न पहिनते ही।

उपन्यास की एक और जीवंत समस्या "तलाक" है। मैंने इस उपन्यास में पश्चिम के तलाक और भारत के तलाक के अंतर को ईमानदारी से चित्रित करने का प्रयास किया है। पश्चिम का तलाक बड़ा आसान और छुतहा है। भारत में तलाक होने तो लगे हैं, परन्तु बड़ी ही कठिनाईयों के साथ। कहा यह जाता है कि भारत का कानून इस सम्बंध में बड़ा कठोर है, किन्तु मैं कुछ और विचारता हूं भारत की नैतिक-भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है कि तलाक रूपी फसल यहां तेजी से फल-फूल सके। तलाक भारतीय दम्पत्ति के लिए एक अभिशप्त प्रक्रिया है।

उपन्यास का अंत ऐसी ही टीस लिए प्रस्तुत किया है।

प्रबुद्ध पाठक और तीखी दृष्टि वाले आलोचक इसमें न जाने क्या क्या खोज लें, मैं नहीं जानता। मैंने विगत डेढ़दशक में अपने चारों ओर जो भोगा है, उसे ईमानदारी के साथ व्यक्त किया है। भाषा को यथा सम्भव सरल रखने का प्रयास किया है, जिससे हर वर्ग का पाठक इसे अपना समझे। यदि कहीं मानसिक संघर्ष के वर्णन में क्लिष्टता आ भी गई हो तो मैं वहां मजबूर ही रहा होऊंगा।

आलोचक वृंद भाषा में कमजोरी खोज लें तो खोज लें, उन्हें खोजनी भी चाहिए। मुझे केवल पाठक तक अपनी बात पहुंचाने की चिंता है।

आशा है मेरे सहृदय पाठक मुझे निरन्तर सहयोग देंगे।

अंत में मैं उन सभी जाने अनजाने व्यक्तियों को धन्यवाद अर्पित कर दूं जिन्होंने इस उपन्यास के सृजन में प्रत्यक्षतः व अप्रत्यक्षतः मुझे प्रेरणा दी है।

अकादमी ने इसका प्रकाशन कर मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिए मैं उसका आभार हृदय की गहराईयों से स्वीकार कर रहा हूं।

नवम्बर 1980 ई०
13/104 बुध की हाट
भरतपुर (राज०)

प्रकाश माथुर

प्रकाशकीय

राजस्थान साहित्य अकादमी की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत यह दूसरा हिन्दी उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। अभी कुछ ही समय पूर्व राजस्थान के युवा कथाकार श्री प्रफुल्ल प्रभाकर का हिन्दी उपन्यास गलत सन्दर्भ प्रकाशित हुआ था और अब प्रस्तुत है राजस्थान ही के उठते-उभरते कथाशिल्पी श्री प्रकाश माधुरी का यह उपन्यास 'कुंआरी सलीब'।

श्री प्रकाश माधुरी ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से भारतीय दाम्पत्य जीवन की उस विषम टीस को अभिव्यक्त किया है, जिसने पारिवारिक मूल्यों और वैयक्तिक निष्ठा में आशंकाओं और संकटों की विभीषिका को जन्म दिया है। श्री प्रकाश माधुरी का यह उपन्यास भाषा, शिल्प और कथाप्रवाह की दृष्टि से अत्यन्त सशक्त और प्रभावोत्पादक है।

हमें आशा है कि श्री प्रकाश माधुरी राजस्थान के कथाकर्म को और उल्लेखनीय योग प्रदान करेंगे।

उदयपुर — राजेन्द्र शर्मा

नवम्बर, 1980 ई० — निदेशक

"…हम भारतीय नारियाँ दूसरों पर अत्याचार क्या करेंगी। हमें तो अत्याचार का क ख ग भी नहीं आता। हम अत्याचार करती नहीं हैं, देखती भर हैं। भोगती भी नहीं हैं, क्योंकि हम अमर बेलें हैं। हमारे आधार वृक्ष पर होता हुआ अत्याचार ही हमारा अत्याचार है। उसे भी हमें भोगना नहीं पड़ता, वरन् उसे भी हम भोगता हुआ देखती भर हैं, क्योंकि हमारा अस्तित्व तो उस वृक्ष के साथ है, जिसकी हर अनुभूति का, हर धड़कन का साथ हमें देना पड़ता है। भोगे हुए अत्याचार में भी अपनापन तो होता है, परन्तु अपने वृक्ष पर हो रहे अत्याचार को हम अपना अत्याचार कैसे कहें, जबकि हमारा अपना कुछ भी नहीं।"

१

कारा कुटीर,

अबोध सम्बोधित तुम,

तुम्हें अनधिकार सप्रेम वन्दे ।

अटपटे सम्बोधित करते हुए भी, मैं तुम्हारे मायाजाल मे बिंधी हुई, अपने को अनुभव करती हूं ।

तुम क्या आते रहे, मैं तुमसे बिन बिंधे भी बिंधी रही । मैं यह जानते हुए भी कि मैं तुम्हें अपनाना नही चाहती, तुम्हें मैं प्रेम करती हूं, ऐसा भी मैं नहीं सोचती, परन्तु तुम कही मेरे अंतर्तम की गहन कारा मे धुंधले से कैद हो । जहां झांककर तुम्हे देखना अच्छा लगता है, बस और कुछ नही ।

मैं कौन हूं, यह तुम्हे मेरे हस्ताक्षरो से ही विदित हो सकता है । उक्त भावों में बहती हुई मुझमें नही ।

तुम हस्ताक्षर देख चुके होगे, अब मैं क्यों और अधिक अपने को धोखे मे रखूं । मुझे जानने के बाद तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि मैं तुम्हे इस प्रकार का पत्र क्यो लिख रही हूं ?

यह तो तुम अच्छी प्रकार से जानते हो कि वे और तुम कितने अभिन्न मित्र हैं । इस अभिन्नता से शायद मेरे अथवा कहूं आपके कारण उनमे और मुझमें दरार पड़ जाये । इस सब की तह में कुछ भ्रांतियां हैं अथवा हो सकता है किसी एक पक्ष में दोष हो । मैं शायद भ्रांति ही इसे समझती हूं । ये भ्रांतियां क्या हैं ? उन्हें मैं तुम्हें लिख रही हूं । इनका अच्छी तरह अध्ययन कर तुरन्त चले आओ अन्यथा शायद कुछ अकल्पनीय घट जाये ।

भ्रांति— १. मुझे तुम्हारी सादगी से प्रेम है।

२. मैं तुम्हारी सात्विकता से प्रेम करती हूं।

३. मैंने स्पष्ट शब्दों में उनसे कहा कि तुम मुझे उपरोक्त बातों के कारण अच्छे लगते हो।

४. तुम मेरे मन मे बराबर बने रहते हो।

५ मैं तुम्हारी आदतो से तुम्हे प्रेम सा करने लगी हूं लेकिन आप उससे भी कही अधिक मेरे मन मे गहरे हैं। यह भी पूर्ण विश्वास के साथ कहा है।

जबसे मैंने उनसे यह सब कहा है, वे खोये खोये रहते हैं। कहते कुछ ही, पर बहुत कुछ चुप-चाप कह जाते है।

मेरा घर मेरी 'कारा' बन गया है। मैं बाहर नही जा सकती, मैं हंस ाही सकती। तुम्हारे द्वारा उन्हे प्रदत्त वस्तुएं देख कर, देख नही सकती हूं। उन्हें ुला नही सकती, सिवाय रुलाने के।

मुझे मेरी कारा से मुक्ति दिलवाओ। उन्हें भ्रांतियो से दूर करो। जिससे ेरा व उनका जीवन प्रसन्नताओ से भर जाये।

केवल एक बार, बस ! एक बार तुम आओ तो फिर भ्रांति दूर होकर जीवन की फुलवारी लहलहा उठे।

विश्वास है तुम अवश्य आओगे। हालांकि वे तुम्हारा आना शायद अच्छा न समझें।

अबोध मैं—
नीता

पत्र सामने खुला छोडकर दिवाकर ने सर हाथो मे थाम लिया। वह पत्र कई बार पढ चुका था किन्तु उसकी समझ मे नहीं आता था कि नीता को क्या हो गया है ? उसका पत्र उसकी आखो मे हजारो आड़े-तिरछे शहतीर बनकर घुस आना चाहता था, पर वह है कि अपनी पसीजती हथेलियो की ढाल से उन्हे रोकने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। हथेलियों के बीच मे भी वह अपने को रोकते हुए, पत्र को देख लेता है कि वह यथार्थ में पत्र ही है या कि एक स्वप्न मात्र लेकिन हर बार पत्र की उपस्थिति उसे दहला देती है।

नीता ने आज जिस रूप मे उसके जीवन मे प्रवेश किया वह बहुत अटपटा था। उसने कभी भी नीता को इस दृष्टि से नही देखा था। यदि कभी उसकी



अपनी गलती पर वह शर्मिदा होकर थोड़ा नीची निगाहों से मेज पर फैली मैल की पर्त को घूरता रहा। वह इस विकट परिस्थिति से उभरने का उपाय सोच ही रहा था कि फिर से स्टाल वाले ने पूछा–क्या आपकी तबीयत खराब है।

इससे दिवाकर को एक बहाना मिला। वह बोला–हां भाई मिट्टू, आज जी कुछ अनमना है। एक गिलास पानी भर पिला दो।

मिट्टू यन्त्र चालित सा चला गया।

स्टाल से भी वह उठ आया पर अपने केबिन में न जा सका। सोचा घर चल दूं, शायद वहां कुछ राहत मिले, लेकिन इसके लिए उसे अपने साहब से पूछना होगा जिसे वह कभी भी उचित नहीं समझता था। भारी कदमों से वह अपने केबिन में चला आया।

पास वाली मेज पर राम हितैषी बैठते थे। वे हितैषी भी सभी के थे लेकिन यथार्थ में हितैषी बन कर वे साथियों के रहस्य ढूंढते फिरते थे और फिर उन्हें "बनाते" थे। यह उनका अपना नित्य का कार्यक्रम था। वह बहुत देर से दिवाकर के चेहरे पर आते जाते भावों का अध्ययन कर रहे थे जब उन्होंने अब भी दिवाकर को नॉर्मल होते न देखा तो वे सोच बैठे कि कहीं न कहीं कुछ दाल में काला है।

मिस्टर हितैषी अपनी सीट छोड़कर आए और बड़े नम्र लहजे में बोले–"साथी" यह उनका सामान्य बोल-चाल का शब्द था।

दिवाकर ने उलझी हुई निगाहों से हितैषी की ओर ताका।

साथी, मुझे बताओ तुम्हें क्या परेशानी है ?

दिवाकर की उठी हुई मूक निगाहें यथास्थान आ गई।

बताओ साथी।

दिवाकर ने हितैषी को फिर देखा और फिर चुप हो गया।

साथी कुछ कहो न।

दिवाकर की निगाहों में हृदय की उकताहट बुरी तरह उतर आई। वह एक तो हितैषी को वैसे ही पसंद नहीं करता था और फिर जिसमें वह स्वयं अपने आपसे लड़ रहा था, उसे क्या बताए ? केवल कठोरता पूर्वक यही कहा– कुछ नहीं हितैषी अपना काम देखो।

हितैषी को यहां मात खानी पड़ रही थी पर वह भी एक जिद्दी व्यक्ति था। उसने फिर कुछ कहने के लिए ज्यों ही मुंह खोला उसकी निगाहें दिवाकर से

जा टकराई। उनमें साफ झलकती कठोरता को वह नजरअंदाज न कर सका और अपनी सीट पर चला गया।

दिवाकर फिर अपने में खो गया।



यह गीता की आदत थी कि वह जब तक दिवाकर की साईकिल नजर न आ जाती तब तक दरवाजे पर खड़ी रहती, लेकिन ज्यों ही उसे साईकिल नजर आती वह चुपचाप अंदर खिसक जाती। दिवाकर दरवाजे पर से ही चिल्लाता था–श्रीमद्भागवत गीता क्या हाजिर है? इसके बाद गीता आकर उसकी टोकरी से टिफिन कैरियर व अन्य सामान उठाकर चल देती और चलते समय एक मीठी चितवन से देख जाती। तभी दिवाकर जाती हुई गीता का आंचल थाम लेता और तब तक न छोड़ता जब तक कि गीता के कपोलों पर एक गर्म चुम्बन न चिपक जाता। और फिर तो जैसे घर में तूफान उठ आता। दिवाकर जल्दी से साईकिल एक ओर रखता और फिर उसके मुक्त कहकहे उठने प्रारम्भ हो जाते। दिवाकर की पुरानी आदत थी कि वह बड़ी ही संजीदगी से गीता के हर काम पर टिप्पणी करता और जब वह खीजती तो उसे मनाता। इसी मान क्रीडा में वे अपने बिस्तरों पर पहुंच जाते।

आज भी वह पूर्ववत् द्वार पर खड़ी थी कि दूर से उसे दिवाकर की साईकिल नजर आई। वह लपक कर अंदर चली गई। दिवाकर और दिनों की भांति न आज चिल्लाया और न गीता को आवाज दी। बस चुपके से साइकिल उसने रखी और सामान उठाने लगा।

गीता ने जब साईकिल रखने की आवाज सुनी तो उसे बड़ा अटपटा लगा, ऐसा कभी होता नहीं था। फिर आज ऐसा क्यों हुआ? वह अनजाने भय से सकपकाती हुई बाहर आई। पता नहीं क्या बात है? शायद आज तबियत खराब हो गई हो। उसे गैलरी में आता दिवाकर मिला। कदम भारी-भारी, आखों में एक अनजानी पीड़ायुक्त पहेली की झाइयां झांकती सी।

गीता ने मूक दृष्टि से दिवाकर की ओर देखा । दिवाकर गीता से आँख नहीं मिला सका । वह गहन चिंतन में व्यस्त सा था । आखिर वह गीता को क्या जवाब दे । यह सही है कि उसने गीता को आज और दिनों के समान नहीं पुकारा था । आखिर उसे इसका स्पष्टीकरण तो देना ही होगा ।

गीता ने उसे फिर से देखा और सहमी आवाज में पूछा— क्या बात है ? सामान उसके हाथ से ले लिया । पुरानी आदत के अनुसार उसने तिरछी चितवन से देखा और बहुत धीमे से ही अनजाने में उसने मुख दिवाकर की ओर बढ़ा दिया ।

दिवाकर अपने आप को बहुत संयत कर रहा था, परन्तु अपने अंदर हो रही 'उठा-पटक' से वह अपने को अब तक मुक्त नहीं कर पा रहा था । अब जब गीता का बढ़ा हुआ कपोल उसने देखा तो उसे अपने नित्य कार्य की याद आई, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी । गीता ने यह समझ कर कि दिवाकर वास्तव में अपने को स्वस्थ अनुभव नहीं कर रहा है, चुभे हुए मन से अपना मुख हटा लिया । दिवाकर अपनी भूल समझ चुका था । उसने बढ़े ठण्डे मन से आगे बढ़कर, उसका एक बहुत ही हल्का सा चुम्बन लिया । पर व्यर्थ, वह अपने आपको नॉर्मल नहीं कर सका ।

गीता सामान उठाकर अपनी रसोई में यह देखने भर को चली गई कि कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं है । फिर वह आहिस्ते से कपड़े उतारते दिवाकर के पास आई । उसने बहुत ही प्रेम भरे स्वर में उसका हाथ थाम कर कहा— क्या बात है ? आज यूं क्यों बुझे-बुझे से नजर आ रहे हो ।

दिवाकर ऊपर से कम से कम अपने को बहुत कुछ संयत कर चुका था । वह थोड़ी भारी आवाज में बोला— मैं आज अपने को स्वस्थ अनुभव नहीं कर रहा हूं । इस झूठ को वह बोल तो गया पर वह स्वयं ही जैसे अपनी झूठ के द्वारा पकड़ा गया हो । एक प्रकार से सहम सा गया ।

गीता ने एक सद्‌गृहणी के समान उसके माथे को छुआ, उसकी नब्ज देखी, जैसे वह उसकी बड़ी पुरानी चिकित्सिका हो ।

सद्‌गृहणी अपने पति की सबसे बड़ी चिकित्सिका भी तो होती है ।

गीता ने मर्म भरी निगाहों से देखा और थोड़ा मुस्करा कर बोली - आप तन से तो बीमार नहीं लगते शायद मन से हैं । फिर वह अपने व्यंग्य का प्रभाव दिवाकर के चेहरे पर देखने लगी । पर वहां एक ठण्डी गूढ़ता देखकर वह सहम गयी और आगे बोली - कोई बात नहीं, आप शायद आज अधिक कार्य करने के कारण थक गए हैं । मैं अभी आपके लिए थोड़ा सा दूध गर्म कर दूं । इससे आपको आराम

मिलेगा। वैसे आप चाय पी लिया करें तो यह जान लेवा थकान आपसे दूर ही जाया करे।

और दिन होता तो दिवाकर चाय की इस पैरवी से भड़क उठता, परन्तु यहां तो आज उसके सारे अर्न्तमन को जैसे नीता रूपी तूफान ने झकझोर कर रख दिया था। वह नीता और उसके पत्र के अतिरिक्त कुछ सोच ही नही रहा था। बस एक निरीह सी दृष्टि से उसने गीता को देखा और फिर वह दूसरी ओर देखने लगा।

गीता के पास इतना समय नहीं था कि वह दिवाकर के साथ ही बैठी रहे। उसकी अपनी भी एक जिम्मेदारी थी। जो दिवाकर के घर में आ जाने के साथ आगे बढी थी। वह रसोई में अथवा इधर-उधर काम अवश्य कर रही थी, लेकिन बार बार दिवाकर की ओर झांक कर भी देख लेती थी कि दिवाकर में अभी परिवर्तन आया कि नही। उसका स्वयं का मन भी खिन्न हो गया था। वह स्वयं भी बुझ गई थी। दिवाकर को कुछ हो जाय और वह प्रभावित न हो, यह सम्भव नही था। वह पुराने विचारों वाले परिवार में पली-बढ़ी थी। वह स्वयं को अमरबेल मानती थी। एक ऐसी लता जो सहारे और पोषण के लिये साथ में वृक्ष चाहती है।

वृक्ष का अनिष्ट उसका अपना अनिष्ट था।

दिवाकर तब तक कुर्सी पर ही बैठा रहा, जब तक सांझ के साये बहुत लम्बे व गहरे न हो गए और रात्रि की काली चादर संसार पर फैल न उठी। वह उठा भी तब जब गीता ने झकझोर कर कहा कि क्या आप आज नित्य-कर्म से भी निवृत न होंगे?

दिवाकर ने सर को एक हल्का सा झटका दिया और फिर असफल मुस्कान को सफल बनाने का प्रयत्न करते हुए बोला - गीता मैं तुमसे पहिले ही कह चुका हूं कि मैं अपने को स्वस्थ अनुभव नही कर रहा हूं।

गीता की अनुभवी आंखें इस बात को पहिले ही अच्छी तरह से परख चुकी थीं कि दिवाकर को कोई शारीरिक व्याधि न होकर मानसिक व्याधि है। तभी उसे एक झटका सा लगा। कहीं उसके अथवा उनके परिवार मे गड़बड़ तो नही है। दिवाकर के परिवार मे तो ले दे कर उसकी एक अध्यापिका मां मात्र है जो भी अब रिटायर होने वाली है। रहा उसके यहां तो मां बाप दोनों ही हैं। दादी भी जिन्दा है शायद दादी को कही कुछ हो गया हो। उस पर सर्वाधिक प्रेम दादी का ही था। उसकी आंखो में अचानक नमी उतर आई। उसने आकुल वाणी मे पूछा - कही कोई बुरे समाचार का पत्र मेरे या आपके यहां से तो नही आया।

दिवाकर के चेहरे पर इतनी देर के बाद एक मंद मुस्कान की रोशनी की लकीर सी उभरी पर वह पल भर ही रही। उसने तुरन्त सोचा- ये गृहणियां भी अजीब होती हैं, जो दूर है उनके लिए इनकी आखो मे नमी कितनी जल्दी तैर जाती है, वाणी आकुल हो जाती है विशेषकर अपने मैके वालो के लिए, परन्तु तुरन्त ही उसे ऐसा लगा कि यही वह गीता के साथ अन्याय कर रहा है। उसने उसके सूखे परिवार मे आकर सभी कुछ फुला दिया था। उसी की जिद पर उसने लगी हुई नौकरी छोडी थी जिससे पहिले उसके परिवार को सहारा मिलता था, और बाद मे उसे सहारा मिलता पर अबकी दिवाकर यह कैसे गवारा करे कि उसकी पत्नि मरे खपे और खिलाए उसके सुसराल वालो को हालांकि गीता ने कभी नही कहा था कि वह अपने घर वालो को सपोर्ट करना चाहती है परन्तु दिवाकर ने पहिली बार मे गीता को समझा नही था। उसे याद आया एक बार उसका भाई कुछ सहायता मांगने आया था, तब गीता कमाती थी, उसने यही कहा कि अपने जीजा साहब से मागो। तब वह यह समझा कि वह उसे यह बता देना चाहती है कि उसे उसके पैसे की परवाह नही है, परन्तु वह उसको सहायता दे सकती है। भल्ला कर दिवाकर ने सौ रुपये अपने साले को सौप दिए। बाद मे गीता ने बडी चख-चख की थी। इतना धन लुटाते रहे उन्हे तो हम क्या खायेंगे। फिर भी वह उसे नौकरी छोड़ने को मजबूर करता रहा। नौकरी न भी छूटती, किन्तु पुराने सस्कार व नए संस्कारो के सस्करण से बनी गीता जो पुरानी अधिक नई कम थी, ने भी नौकरी रखने की जिद न की। फिर दिवाकर मे नई शादी की मस्ती व अदूरदर्शिता थी। यदि ये दोनो बातें न होती तो नौकरी रही आती।

गीता ने लगभग भिंझोडते हुए उसे रुआंसे करुण स्वर में पुकारा– बोलते क्यो नही ? क्या बात है ? किसकी तबियत खराब है ? और गीता ने इतना कहते हुए अपने दो बूंद आसू टप से फर्श पर टपक जाने दिए। चुप्पी से विश्वास हो चुका था कि कही न कही कुछ बडी गडबड हो गई है। सामान्य बीमारी पर भी दिवाकर का चहकना इस प्रकार नही रुक पाता था कि वह एक दम प्रस्तर-प्रतिमा की तरह जड़ बन जाए।

दिवाकर ने जब उसे रोते देखा तो उसे अपनी गलती का भान हुआ। वह जानता था कि यदि गीता ने रोना प्रारम्भ कर दिया तो फिर उसके लाख समझाने पर भी विश्वास न होगा, न रोना रुकेगा। ऐसी दशा मे शायद उसे गीता के पत्र के बारे मे बताना पड़ेगा। जो शायद उसके हक मे ठीक न हो। वह गीता को धीरे-धीरे अपने अंक मे समेटता रहा और उसकी आखो को अपने हथेलियो से

सुनाता रहा, फिर बोला गीता बावली बनती हो। मैंने कहा कि मेरी तबियत ठीक नहीं है। कहीं से गलत खबर का पत्र नहीं आया बस थोड़ा सा आफिस में झगड़ा सा हो गया है, जो निबट जायेगा। वह एक सफेद झूठ और बोल गया, परन्तु पहिले की भांति वह भय से सिमटा नहीं। एक झूठ के बाद जैसे दूसरी झूठ उसे शनैः शनैः भय मुक्त करती जा रही थी। गीता ने दिवाकर की आंखों में झांककर देखा– वहां किसी अनहोनी का संकेत नहीं था। पर एक अनबूझ पीड़ा का भयंकर सागर लहरें मार रहा था। उसे यह पता था कि दिवाकर सभी प्रकार के नशों से, दिखावों से परे रहता था। आफिस में अक्सर उसके गहरे झगड़े उसकी बहसों में हो जाया करते थे लेकिन इतना कभी नहीं कि वह इस तरह से जड़ हो जाये। उसकी वाणी ही अवरुद्ध हो जाय। झगड़ों के बाद तो उसकी वाणी और अधिक प्रखर हो जाया करती थी। आफिस की झुंझलाहट गीता पर ही उतरती थी फिर भी वह सुन कर गीता के सीने पर छाता हुआ भार तुरंत हट गया। वह बोली–फिर आप इसी पर इतने बुझ गए। यह नोंक झोंक तो बहुधा आपको और अधिक वाचाल बना जाती थी।

दिवाकर उसका क्या जवाब दे। वह बार बार अपने को गीता के प्रश्न से अलग करना चाहता था। लेकिन वह तो जैसे अजगर की भयंकर लपेट के समान उसे अपनी कुण्डली में बुरी तरह कसता ही जा रहा था किन्तु उसे किसी न किसी तरह अपनी इस स्थिति से निकलना ही होगा। वह और तो कुछ न कर सका परन्तु एक धुमीली मुस्कान उसकी ओर डालकर हाथ मुंह धोने गुसलखाने में चला गया।

सर भारी–भारी सा लग रहा था, मानो उसमें तूफान की सांय-सांय हो रही हो। उसने सर पर अच्छी तरह पानी डाला। तब उसे ऐसा लगा कि थोड़ी सी तसल्ली आई है और गीता का प्रश्न पानी के इस बहाव में कहीं थोड़ासा फीका पड़ा है। गुसलखाने से बाहर आया तो सचमुच गीता ने उसके लिए दूध तैयार कर रखा था। वह दूध देखकर भी ऐसे ही भड़क उठता था जैसे चाय या शराब। वह थोड़ा नॉर्मल हो ही चुका था। उसकी वाचालता फिर से लौट आई थी। तुनककर बोला–अच्छा जी तो आप बालक के लिए दूध ले आईं।

ये लो आपको एक तो दूध लाएं और आपकी ऊपर से सुनें और। गीता इस परिवर्तन से पुलक उठी।

गीता तुम जानती हो कि दूध बालकों का प्रिय पेय है न कि मेरा।
अजी रहने दो बुड्ढ महाराज, थोड़ासा पीलो ताजगी आ जायेगी।

बालक को तो मां का दूध पिलाया जाता है। कहो तो आपकी माताजी को एक छटाक दूध के लिए तार दे दूं।

बस दिवाकर खुल गया— आगई अपनी औकात पर। अपनी तरह औरों को भी समझती हो। मेरी मा को तार देर मे मिलेगा अपनी माताजी को दे दो।

गीता की क्षुद्र घंटिका सी हंसी खिल पडी। हंसते हंसते बोली— ओहो तो आपको अब मेरी मा का दूध पीने का शौक चर्राया है। जानते हैं फिर मेरा आपका नया रिश्ता क्या होगा।

दिवाकर अपनी जगह से उछला और उसने गीता को दबोच लिया। फिर तो जो कहकहों का तूफान उठा तो जाने कहाँ नीता और कहाँ नीता का पत्र।

बारह का घडियाल बज चुका था। दिवाकर की आंखों की नींद उड़ गई थी। दस बजे तक तो गीता की उपस्थिति में उसे नीता के पत्र ने परेशान नहीं किया किन्तु दस बजते बजते जब गीता गहरी नींद में सो गई, उसके सामने फिर से स्थिति मुंह फाडे खडी हो गई। गीता अधिक देर तक जाग नहीं सकती थी। अब भी अचेत गीता उसके पहलू मे अस्त व्यस्त पडी थी। हल्के नीले प्रकाश मे उसका शरीर भी जैसे रात्रि मे सिमटता सा नीले कमल जैसा लग रहा था।

धोती घुटनों से ऊपर चढ गई थी। सासें नींद का बोझ लिए बहुत धीमी गति से चल रही थी। मानो वे दिन भर के थके यात्री हों और अब पडाव नजदीक देखकर और अधिक थक गए हों।

दिवाकर के सामने एक एक कर विगत के चित्र उभर रहे थे।

वह गीता से क्या कहे— जिसने अपना सब कुछ सम्पूर्ण विश्वास के साथ उसे सौंप रखा है। अभी गीता की क्या आयु है? यही बाईस—तेईस और वह खुद तीस-बत्तीस का। सिद्धान्तों ने जल्दी शादी न करने दी और परिस्थितियों ने उसको मजबूर किया कि इतने आयु अन्तराल के होते हुए भी वह शादी करे। सोचता था कैसे निभेगी, लेकिन गीता ने उसके जीवन का रुख ही पलट दिया। वह तो जैसे उसका एक अनिवार्य अंग होकर रह गई है। एक छोटी सी मुलाकात उसकी सबसे बड़ी मुलाकात बन गई।

पहिली बार जब वह कानपुर से अपने एक इन्टरव्यू मे असफल होकर आ रहा था तब एक छरहरे तन की, चांदनी सी शुभ्र युवती अपने समस्त सामान को लिए बुकिंग - विन्डो पर खडी हुई बाबू से बहस मे मशगूल थी। वह कहता था

कि छुट्टे पैसे लेकर आओ और वह तेज स्वरो मे कहती थी मैं अपना सामान छोडकर कहां जाऊँ। पैसे भी वह छोडना नही चाहती थी। वह ठगा सा उसे देखता रहा फिर उसने आगे बढ कर बाबू से कहा था भाई इन्हें क्यो तग करते हो यदि खुले पैसे हो तो दे क्यो नही देते। बुकिंग बाबू शायद उसे विन्डो पर और अधिक खडा रख कर आंखें सेंकना चाहता था। शायद उस पर खुले पैसे थे भी। क्योकि एक बूढा जो टिकिट अभी ले चुका था। कह रहा था— अरे अभी अभी छुट्टे पैसे दिए है और अब कहता है नही है। सालो मे ईमानदारी से काम करने का तो माद्दा ही नही है।

दिवाकर ने इतना सुना तो उसे एक शह मिल गई। वह थोडे तीखे स्वर मे बोला- जनाब देखिये ये सज्जन अभी अभी आपको— छुट्टे पैसे दे चुके है। फिर आप किस प्रकार इन्कार कर सकते है बाबू भी थोड़ा तीखे स्वर मे इङ्गलिश मे बोला— "व्हाई आर यू इन्टरफीयरिंग व्हाइल यू आर नॉट रिलेटेड' उससे भी और अधिक तीखे स्वर मे दिवाकर बोला 'यू थिंक आई केन इजीली बी इन्फ्लूएन्सड विद योर डर्टी इङ्गलिश। आई एम एन इन्डियन एण्ड आलवेज स्पीक इन हिन्दी, यू डिस्ओनेस्ट वन।' बाबू ने तीखे स्वर मे इस फटकार का जबाब दिया लेकिन बूढा जो पढा लिखा था, उससे भी तीखे शब्दो मे बोला— जनाब मैं आपको छुट्टे पैसे दे चुका। आप इन्हें टिकिट दे, पैसे दे, और औरो को टिकिट लेने दें। दुर्भाग्य है हमारा हम सामान्य बातें हिन्दी मे करेंगे और जब दिखावे का समय आयेगा तो इङ्गलिश मे बोलेंगे। बाबू ने देखा कि अब जनमत बदलेगा। उसने जलती निगाहों से बूढे और दिवाकर को देखा और फिर हार कर टिकिट और छुट्टे पैसे दे दिए। जब दिवाकर की बारी आई तो बाबू ने छुट्टे पैसो की फिर मजबूरी दिखाई। गाडी आचुकी थी। दिवाकर विवश होकर इधर-उधर देखने लगा। वास्तव में अब छुट्टे पैसे चुक गए थे। उस लडकी ने उसकी विवशता को भाप लिया और तत्काल जो छुट्टे पैसे उसकी मुट्ठी मे बद थे उसके आगे रख दिए। दिवाकर ने और कोई चारा न देख कर उनमे से छुट्टे पैसे उठाकर बाबू को सौंपे और बधा नोट उसकी हथेली पर रख कर अपनी अटेची और बैग उठाकर गाडी की ओर लपका। लडकी के पास सामान अधिक था वह इतना सामान लेकर चल नही पा रही थी। दिवाकर ने यह देखा तो चुपके से उसका भी सामान उठाया और चल पड़ा।

गाडी मे वे चुपचाप ही रहे। कुछ स्टेशन पार हो जाने के बाद उसने चोरी से उसे देखा तो उसे भी अपनी ओर देखते हुए पाया। दोनो की निगाहे टकराईं और झुक गईं। एक सज्जन तो बहुत देर से उन्हें देख रहे थे। धीरे से

दिवाकर से बोले– आप अभी अभी विदा कराकर लौटे हैं शायद। उसकी यह बात सुन कर लड़की कानों तक लाल हो गई परन्तु वह बोलना चाह कर भी न बोल सकी।

कई स्टेशन इस प्रकार गुजर गए। फिर दिवाकर ने ही इस चुप्पी को तोड़ा। क्या आप चुप रहना ही पसंद करती हैं? वह लड़की मुस्कराई और फिर मानो नाराज हो एक तरफ सरक गई। दिवाकर बोलने का आदी था। उससे चुप कहां रहा जाता। फिर बोला– आपको कहां तक जाना है। लड़की ने कहा कुछ नहीं, टिकिट दिखा दिया। इस बीच वह बूढ़ा उतर गया था। नए अनजान यात्री आ गए थे।

दिवाकर मुस्करा पड़ा। तभी लड़की ने उसका एक रुपए का नोट उसे वापिस किया। दिवाकर बोला– छुट्टे पैसे कहां हैं अपने पास।

लड़की मुस्करा पड़ी और पहली बार बोली–मैं आपसे छुट्टे तो नहीं मांगती।

दिवाकर मजाक से बोला– मैं आपसे नोट तो नहीं मांगता।

लड़की झेंप गई और उसने हौले से नोट उसकी गोद में डाल दिया।

दिवाकर ने उसे उठाकर उसके हाथ पर रखा। उसकी नर्म हथेली से उसकी उंगलियों ने स्पर्श किया तो एक विद्युत तरंग सी उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई।

शायद ऐसा ही उसके साथ था।

फिर तो बातों का जो बांध टूटा तो सारे रास्ते बातों की फुलझड़ियां छूटती रहीं। इसी बीच उसे मालूम हुआ कि वह एक प्राथमिक विद्यालय में अध्यापिका है।

दिल्ली स्टेशन पर जब दोनों उतरे तो सांझ का झुटपुटा सा था। लड़की का पिता उसे लेने आया था। दिवाकर को यह विदित हुआ कि उसकी गाड़ी जा चुकी है तो वह बहुत निराश हुआ। उसकी निराशा देख कर लड़की ने प्रस्ताव किया कि वह उसके घर पर चले। पर वह एक छोटी सी मुलाकात को इतना बड़ा रूप कैसे दे। फिर लड़की के पिता ने तो यह प्रस्ताव रखा नहीं था। अंत में पिता ने भी जब आग्रह किया तो वह साथ चला गया।

इस प्रकार वह मुलाकात पलों की सत्कार युक्त सीढ़ी पार करती हुई, उसके मन की दहलीज को पार कर उसके आंगन में उतर आई। आज वही उसका सर्वस्व है।

उसने एक उचटती सी निगाह बेसुध सोती गीता पर डाली और लम्बी आह उसके सीने से निकल कर होंठों पर तड़प गई।

जहां इस मीठी स्मृति ने उसे गुदगुदाया था वहीं आज नीता के इस पत्र ने कड़ुवाहट भी भर दी थी कि नीता का रुझान भी उसकी ओर होगा। उसे इस बात की कभी आशंका भी नहीं थी कि वह नीता जो कालेज के समय में उसकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखती थी, वह इस रूप में उसके सामने आयेगी। यदि मुलाकातें भी होती थी तो महज अध्ययन की समस्याओं के कारण नोट्स की गरज से।

नीता फैशन की पुजारिन थी। उसका दायरा भी फैशनेबल लड़के-लड़कियों में ही था। जिसने अच्छा पहिना, अच्छा खाया, वह आज न जाने क्यों उसके शुष्क जीवन में प्रवेश कर रही है। जो हमेशा उसे ढोंगी कहती थी, काल्पनिक कहती, यथार्थ जीवन से परे का आदमी कहती, संत आदि न जाने क्या क्या कहा करती। वही उसकी सादगी में प्रेम कर उठी है, शायद उसे न चाहते ए भी चाहती है।

उसे सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस पत्र की भाषा पर था कि उसके सम्बोधन कितने अटपटे हैं। फिर सारे पत्र में तुम के अलावा और किसी सम्बोधन शब्द का प्रयोग नहीं है। इतना नजदीकी, इतना आत्मीय सम्बोधन तो शायद उसे कभी गीता ने भी नहीं किया। नीता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यहां तक कि नीता से सुबोध के लिए भी इतना नजदीकी सम्बोधन उसने नहीं सुना था, शायद सुबोध के प्रति उसका यह एकान्तिक सम्बोधन हो।

नटखट वह प्रारम्भ से ही थी। ऐसा तो नहीं लगता कि वह कहीं कोई शैतानी कर रही हो। इस विचार से उसे थोड़ा मनः संतोष हुआ। फिर उसने पत्र निकाला, उसे पढ़ा तो लगा कि इतना बड़ा कदम महज शैतानी के लिए नहीं उठाया जा सकता। यह पत्र तो स्वयं में एक चिन्गारी है जो उसकी हरी-भरी गृहस्थी को फूंक कर रख देगा।

घड़ियाल दो बजा रहा था और नींद थी कि दिवाकर की आंखों में आ ही नहीं रही थी।

नीता की शादी के बाद का रूप उसकी आंखों के आगे चल चित्र की भांति तैर उठा। वह नटखट और चंचल नीता सुबोध के आगोश में आकर मानों बाधित हो गई हो। चंचलता तो मानो छू हो गई थी। जब देखो तब सुबोध को लताड़ती— तुम ये पीना छोड़ो वो पीना छोड़ो, यहां जाना छोड़ो, वहां जाना छोड़ो। सुबोध जब भी मिलता तो अपनी रामकथा ले बैठता, लेकिन यह सब तो दिखावा मात्र था। उनके रहन सहन में रंच मात्र भी अंतर नहीं आया था। अन्दर से दोनों बेहद खुश, बेहद सन्तुष्ट।

सुबोध जिसने अपने को कभी जमीन पर नही समझा, वह तो अपने आपको हमेशा मुक्त गगन का पछी समझता। नीता ने भी उसे कभी नही बांधा क्योंकि नीता स्वयं भी मुक्त विचारो वाली थी। एक दूसरा अपने को पूरक समझ रहा था, अनिवार्य नही।

सुबोध जो आराम करता तो महीनों पढने का नाम न लेता और फिर पढता तो भूत की तरह लग कर। किसी भी क्षेत्र में वह पीछे नहीं रहना चाहता था। वह तो ऐसा चौखटा था जिसे जहां चाहो फिट कर दो, जचेगा।

आज नीता अपने उसी मनमीत से ऊब गई है ऐसा क्यों हुआ ? क्या सुबोध अधिक पीने लगा है ? कही वह पीते पीते भटक तो नही गया है ?

पत्र जैसे उसके लिए नागपाश बन गया था। वह सोच रहा था कि पत्र से गीता को परिचित करायें या नही। यदि उसे पत्र बताता है तो पता नहीं गीता उसके बारे मे क्या धारणा बना ले, आखिर वह भी एक औरत ही है। पत्र को उससे गोपन रखना ही उसे श्रेयस्कर लगा। समय आने पर ही उसका बताना ठीक होगा, यही उसने अंतिम रूप से विचारा।

घड़ियाल अब तीन बजा रहा था।

नींद लेने के प्रयास मे दिवाकर ने करवट बदली पर नींद कहा ? प्रातः होने ही वाली है, गीता भी उठने वाली है, और वह नही सो पाया तो उसकी चोरी पकड़ी जायेगी अतः वह फिर सोने की सोचने लगा किन्तु अनायास ही नीद में गाफिल गीता की बाहें उससे लिपट गई। उसने बड़े ठण्डे रूप से उसकी बाहों को हटाया और फिर अंतिम निर्णय सा लेते हुए उसने सोचा— कुछ दिन उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि सुबोध और नीता की मिली-जुली भगत है तो शायद चार पाच दिन मे सुबोध का पत्र आजायेगा, नही तो वह स्वयं चला जायेगा।

एक करवट बदल कर सोती हुई गीता को उसने देखा और भावावेश मे आकर उसने उसका भरपूर आलिंगन लिया। सर पर से एक भार हल्का हो रहा था, इसे वह पिछले दिन के मध्यान्ह के उपरान्त मे ही ढोता आ रहा था। एक भूंठी तसल्ली ही सही, इस भार को फिलहाल उतार फेंकने के लिए काफी थी।

दो-तीन दिन तो दिवाकर ने पत्र की प्रतीक्षा में बिता दिए, परन्तु ज्यो ज्यो अधिक समय गुजरता गया और पत्र के आने में देरी होती गई, उसकी अकुलाहट बढ़ती गई। एक पत्र सामान्य समाचारों का उसने भी डाला था, किन्तु उसकी भी कोई प्रतिक्रिया जैसे उन लोगो पर नही हुई थी।

अब फिर से अपने अंदर पनप रहे विषधर की कुलबुलाहट वह अनुभव कर रहा था। आखिर क्या रहस्य है कि एक मन उसे चण्डीगढ़ की ओर धकेलता है तो दूसरा उसे न जाने के लिए बार बार कोंचता है।

गीता उसके इस परिवर्तन पर फिर से व्याकुल हो उठी उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि दिवाकर को यह फिर क्या हो गया है ? उसका स्वास्थ्य दो-तीन दिन सामान्य रहा, पहिले जैसा हास्य उसके अधरो पर लौट आया और अब वह पुनः बुझ सा गया है।

गीता उससे कुछ भी पूछती तो वह या तो चुप्पी खींच जाता या फिर हाँ हूं मे ही उत्तर देता।

अंत में दिवाकर ने निर्णय कर ही लिया कि वह नीता के पास अवश्य जायेगा। यदि सुबोध उससे झगड़ा करता है तो वह शान्तिपूर्वक उसकी सुनेगा और उसे समझायेगा। आखिर इस असह्य भार को वह कब तक यूं ढोता रहेगा. उसे स्थिति की वास्तविकता से तो परिचित होना ही होगा।

इस आने वाले रविवार को उसने जाना निश्चित कर लिया। प्रश्न था गीता से क्या कहे कि वह चण्डीगढ़ क्यो जाना चाहता है ? ऐसा कोई ठोस कारण उसके पास न था, जिसे वह उसे बता सके, फिर भी उसे जाना तो होगा ही।

शनिवार को सांझ से ही वह गीता से कहने का प्रयास कर रहा था, किन्तु वह साहस नही कर पा रहा था कि कहे किस प्रकार।

झूठ बोलने से पूर्व झूठे व्यक्ति की गति बडी विचित्र हो जाती है। वह कहे तो किस प्रकार, अभिनय करे तो किस प्रकार, हर एक तो अभिनेता नही होता। फिर साहस का बालू पैरों तले खिसकता रहता है, झूठ का यात्री, रेगिस्तान का यात्री होता है।

अंत मे सोते समय वह गीता से बोला– मैं प्रातः काल पहली गाडी से चण्डीगढ़ जाऊंगा।

गीता ने अचरज भरी निगाहों से उसे देखा और पूछा क्या बात है ? क्या सुबोध बाबू का पत्र आया है। आपने बताया तो नही।

दिवाकर अपने अंदर ही अंदर सकपका गया। शायद गीता सब कुछ जान गई है फिर भी इसे खोद खोद कर पूछना अच्छा लगता है। झूंठ से भयभीत मनुष्य शिकार में घिरे पशु के समान होता है, जिसे हर उस गति से चौंक जाना पड़ता है जो उसे अनुभव होती है। यही स्थिति इस समय दिवाकर की थी, वह भी

गीता रूपी शिकारी से भयभीत शिकार था उसने एक और मन गढ़न्त झूठ बोला– सुबोध की तबियत कुछ खराब है।

क्या पत्र आया था ?

पत्र ही आया था।

क्या मतलब आपका 'पत्र ही आया था' से।

अपने मे सिमटते से दिवाकर ने कहा– यही कि एक व्यक्ति समाचार दे गया था। दिवाकर को लगा कि शायद बात अब खुली कि अब खुली हालांकि उसे विश्वास था कि पत्र का पता गीता को लग ही नही सकता यह पूर्णतः सुरक्षित है।

गीता एक दम व्याकुल होकर उठ खड़ी हुई और बोली– तो आप तभी इन दिनो यो आकुल-व्याकुल थे। आपने मुझसे कहा क्यो नही ? क्या मैं सुबोध बाबू के लिए कुछ अनिष्ट सोच सकती थी ?

दिवाकर ने निवृति की स्वांस ली। बोला कुछ भी नही।

गीता फिर बोली– आप जा रहे हैं तो मैं भी साथ चलती हू।

इसको सुनकर मानो दिवाकर के सर पर हथौड़े की सी चोट पहुंची। वह तिलमिलाकर तुरत बोला, तुम क्या करोगी अभी ? तुम्हारी क्या जरूरत है वहा ?

गीता तुनक कर बोली– आप मुझे पराया समझते है। तभी तो समाचार भी नहीं दिया। अब मुझे ले चलने के नाम पर घबरा रहे हैं जैसे वास्तव मे मैं आपके मित्र के लिए अनिष्टकर ग्रह हू।

दिवाकर ने सर थाम लिया। वह थोड़ा बुझे स्वर मे बोला– गीता तुम समझा करो। हम एक दम घर अकेला छोड़कर कैसे चल दे। फिर सुबोध की ओर से भी तो कोई समाचार नही मिला है।

गीता ने तीखे स्वर मे कहा– ठीक है, आप जाइये। मैं कौन होती हूं ?

दिवाकर एक और झूठ की तैयारी मे जुट गया। वह थोड़ा रुककर बोला– गीता हम किसी अच्छे काम के लिए तो जा नही रहे हैं। मैं वहा जाकर वस्तु स्थिति से तुम्हे पत्र या तार द्वारा अवगत करा दूंगा। फिर जैसा तुम उचित समझो कर लेना।

गीता ने बुझे मन से स्वीकृति दे दी।

□

३

सुबह की पहली बस दिवाकर ने पकड़ी। इन दिनों वह पानीपत ही स्थानांतरित होकर आ गया था। गीता से उसने कह दिया कि वह चाहे तो अपने पिता के पास भी जा सकती है। हालांकि कहने के बाद उसने स्वयं सोचा था कि रात को उसने घर की दुहाई देकर ही गीता को रोका था। गीता यह समझते हुए भी कुछ न बोली वह स्वाभिमानिनी थी। उसके संस्कारी गृहणीमन ने उसे कुछ न कहने दिया। जाते हुए से कहना उचित नहीं समझा जाता है। फिर वह स्वभाव से पति-विरोधिनी और जिद्दी भी न थी।

दिवाकर तो चला गया परन्तु गीता के सरल हृदय में एक शंका की विष- बेल का बीजारोपण हो गया।

प्रातःकालीन बस में आमतौर पर भीड़ नही रहती। एक पूरी सीट पर वह टांगे पसार कर अधलेटा हो गया। गाड़ी की रफ्तार के साथ-साथ उसके विचारों की गाड़ी भी पुनः रफ्तार पकड़ने लगी।

वह चला तो आया है, किन्तु यदि परिस्थितियां वाकई पत्र के अनुसार ही हुईं तो सुबोध से वह किस प्रकार आंखें मिलायेगा आखिर सुबोध उसके बचपन का मित्र है। उसके हृदय पर क्या बीत रही होगी फिर कहीं वह उसकी सूरत देखते ही भड़क न उठे, यदि उसने देखते ही उस पर हाथ चला दिया तो क्या होगा ? उसकी क्या इज्जत रहेगी ? फिर उसे क्या पता कि वह निर्दोष है या नहीं ? शायद उसे अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का अवसर ही न मिले।

पत्र के बारे मे सुबोध को ज्ञान अवश्य ही होगा। जब नीता ने लिखा है कि उसका घर ही उसकी कारा है तो उसकी प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि तो रखी ही जा रही होगी। इस अवस्था में इस पत्र का डाला जाना भी उससे छुपा न होगा। यदि उसे इस बात का ज्ञान है तो अवश्य ही उसकी प्रतीक्षा बड़ी व्याकुलता से कर रहा होगा और भरा बैठा होगा।

तभी एक विचार और उसके मन में कौंधा– कहीं इसके अतिरिक्त एक और परिस्थिति से उसको सामना न करना पड़े। वह जानता था कि नीता के ही मकान में सुबोध रहता है। सुबोध का अपना कुछ न था। कालेज में वह सजा-धजा जरूर रहता था, किन्तु यह सब वह अतिरिक्त समय में काम करके पैदा करता था, आज यदि कुछ उसके पास है तो वह सब नीता द्वारा प्रदत्त। ऐसी दशा में कहीं नीता ने उद्दण्डता पूर्वक सुबोध को ठुकरा न दिया हो। यदि इस प्रकार की स्थिति से उसका सामना हुआ तो क्या होगा ?

एक दूसरा विचार तुरंत उसे छू गया। यदि यह महज शरारत हुई तो आज रविवार होने के कारण दोनों सज्जन घर पर न होकर पंजोर में मुगल गार्डन्स में होंगे। इस विचार मात्र से उसे शांति मिली। एक हल्की सी मुस्कान उसके अशांत मुखड़े पर उभर आई और अनायास ही एक ओह के साथ उसके मुख से निकला, काश ! ईश्वर ऐसा ही करे।

इन्हीं विचारों में गोते लगाता हुआ वह अपने को नॉर्मल करने का प्रयास करता रहा। वहां वह किस प्रकार से बातें करेगा, यह विचारता रहा।

अंत में वह भयावह मंजिल आ ही गई। कांपते हुए उसने बस से नीचे कदम रखे। वह सुबोध के द्वार तक अभी नहीं पहुंचा था, किन्तु उसके कदम उसका साथ यहीं से नहीं दे रहे थे। उसे अपनी ही स्थिति पर एक शेर की कड़ी याद आ गई—

वो डगमगाए मेरी पुश्त की जानिब,

सामने होते तो क्या होता ?

उसने सवारी लेने के बजाय पैदल ही जाना उचित समझा क्योंकि उसे पहुंचने से पूर्व अपने आपको हर-प्रकार की परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार करना था। जितना वह समय ले सके उतना ही अच्छा था। धीरे-धीरे चलता हुआ जब वह सुबोध के सेक्टर में पहुँचगया तो उसे विदित हुआ कि वह तो अपनी मंजिल पर पहुँच गया है। वह इस बीच सोच भी नहीं पाया कि वह क्या करेगा।

थोड़े ही फासले पर सुबोध का मकान था। धड़कते हृदय से उसने कोर्ट-यार्ड में प्रवेश किया। अंदर एक अनबूझ सी हृदय पर भार डालने वाली शांति थी मानो वहां के जीवन में से किसी ने वात्सल्य रूपी मांसे खींच ली हों। मानो कि वे विद्युत से चलने वाले खिलौने मात्र हों। बाहर श्यामा मिल गया। वह इस घर का

सबसे पुराना व विश्वस्त नौकर था। वह उसे देखते ही अंदर खबर करने का आदी था लेकिन आज उसने केवल उसे सूनी आंखों से देखा भर और फिर वह अपनी पुरानी और आदत मे पड़ी हुई तेजी से अंदर चला गया। उसमें तेजी जरूर थी, किन्तु उसमें से जैसे कुछ कट गया हो।

शायद यह दिवाकर के मन का वहम ही हो।

नीता और सुबोध की उपस्थिति पत्र की सत्यता प्रमाणित कर चुकी थी।

श्यामा ने बाहर आकर उसे बताया कि वह अन्दर जाये।

यही प्रारम्भ था।

ऐसा कभी नही हुआ। हर बार जब भी सुबोध को पता लगा कि वह आया है तो वह अन्दर से ही दिवु .....दिवु कहता, चिल्लाता आता था और वह भी भावावेश मे उसे सुबोध न कह सुबी ही कहता था नीता तो दूर खड़ी दर्शक के समान उनका मिलन देखती थी और अक्सर कहा करती थी कि देखो आधुनिक राम और भरत मिल रहे है। वह तो मात्र दर्शक रहती। दिवाकर के मन मे एक भावी शंका का विषधर तन कर बैठ गया। आखिर जिसका उसको भय था वही हुआ फिर भी विचार पूर्ण मुद्रा मे अंदर की ओर बढ़ गया। साथ में आते हुए श्यामा से अनायास ही उसने पूछा— क्या सुबी का स्वास्थ्य खराब है ?

श्यामा ने रिक्त स्वर मे कहा- शायद।

तब तक दिवाकर अंदर चला आया। सामने नीता थी सुबोध अभी तक नजर नही आया। नीता ने एक अर्थ पूर्ण मुस्कान से उसका स्वागत किया। वह मुस्कान ऐसा लगता था कि शायद अर्थपूर्ण होते हुए भी कही ऊपर से ही तैर कर आई हो।

उसने इधर उधर देख कर पूछा— सुबी कहां है ?

नीता ने हाथ से गुसलखाने की ओर इशारा कर दिया।

सुबोध को अपने सामने न पाकर दिवाकर ने एक गहरा श्वास लिया और हल्की दबी हुई आवाज मे नीता से पूछा— क्या यह पत्र तुमने ही लिखा था ?

इसकी स्वीकृति मे हिलते नीता के सर ने कही गहरे मे दिवाकर को हिला कर रख दिया। उसने एक प्रश्न और बड़ी आकुलता और त्वरा से पूछा- क्या सुबी को इसका पता है ?

नीता ने दिवाकर की आखो मे झांका और फिर एक संक्षिप्त नही मे उत्तर दे दिया, किन्तु उसकी आंखे मानो पूछ बैठी कि क्या सुबोध परेशान होगा।

इस जानकारी से दिवाकर के मुख परसे कुछ परेशानियों के भाव टल गए। वह जब तक सुबोध आए तब तक नॉर्मल हो जाना चाहता था नीता कमरे से जा चुकी थी। कमरे मे एक तीखा मौन उतर आया था। यह मौन उसे यहां कभी अनुभव नही हुआ। इस बार जब अशांति सभी के दिलो मे गहरी उतर आई हो तो फिर बाहर जो कुछ शेष होगा वह एक असह्य मौन ही तो होगा।

एक मिनिट बाद ही तौलिया लपेटे हुए सुबोध गुसलखाने मे बाहर आ गया। दिवाकर ने उठकर सुबोध को बाहों मे भर लेने का असफल अभिनय किया। ऐसा ही सुबोध की ओर से भी हुआ।

एक मौन उन दोनों के मध्य त्रिशकु बनकर लटक आया। सुबोध कपड़े पहिनने लगा। दिवाकर टकटकी लगाये उसे देखतामर रहा। अंत मे उसने ही बात प्रारम्भ की— सुबी इस समय गुसल मे कैसे ? क्या तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नही ?

हा... ..आ— ठीक तो हू। एक अति ठण्डा स्वर उभरा।

क्यो ? इस प्रकार मे बुझे से क्यो हो ?

नही तो। शायद तुम्हारा वहम हो, और एक गहरा निश्वास उसके सीने से उठा और होठो पर आकर अटक सा गया।

सुबी... . और दिवाकर इससे अधिक कुछ न कह सका।

सुबोध ने एक मार्मिक दृष्टि से दिवाकर को देखा।

एक तीखा मौन फिर उभर आया था।

थोडी देर में ही नीता सुबोध के लिए चाय ले आई। वह पूर्व की भांति चौंका, परन्तु फिर शात हो गया। यहां का यह नियम सा बन गया था कि जब तक दिवाकर रहता उसके सामने चाय नहीं लाई जाती थी और यदि लाई भी जाती थी तो इस प्रकार के वातावरण मे कि हंसी खुशी दूसरो के द्वारा पी ली जाती थी और उसका जलना भुनना प्रारम्भ हो जाता था। उसके भाषणों मे और अधिक तीखापन आजाता था। आज तो जैसे सब कुछ जैसे बदला-बदला सा था। सुबोध ने केवल एक बार उसे कनखियो मे देखा भर और सिप करने लगा। जैसे वह अपने व्यवहार से यह बताना चाहता हो कि दिवाकर तुम कितने बनते थे, तुम्हारा भण्डाफोड तो हो ही गया। दिवाकर इस मौन से घबरा उठा। आखिर सुबोध कुछ बोलता क्यों नही ? यदि इसे पत्र के बारे मे सब कुछ पता है तो भडकता क्यो नही ? यदि मालूम नहीं है तो अपना दिल खोलता क्यो नही ?

अचानक सुबोध की सपाट आवाज ने मौन भंग किया– दिवाकर तुम आराम करो। यात्रा से थके आए हो। मैं जरा बाजार तक हो आऊँ।

दिवाकर को लगा जैसे यह आवाज सुबोध की न होकर किसी और की हो। जैसे यह बहुत दूर के किसी निर्जन मरुस्थल से आ रही हो।

सुबोध ने उठने का उपक्रम किया।

उसके उठने में भी दिवाकर को यह अहसास हुआ जैसे वह कह रहा हो– अच्छा भाई लो सम्हालो हम चले। उसका यह बेगानापन दिवाकर के अंदर कहीं बहुत गहरा चुभ गया। वह तड़प कर बोला– सुबी यदि मेरा आना तुम्हें अच्छा नहीं लगा हो तो मैं लौट जाता हूं। पता नहीं तुम आज इस प्रकार क्यों उखड़ा-उखड़ा व्यवहार कर रहे हो।

सुबोध ने बिना किसी उत्तेजना के कहा– दिवू। पहली बार जैसे उसने दिवाकर को पुकारा हो– तुम समझते क्यों नहीं ? मानो एक प्रखर पीड़ा उसकी वाणी मे उतर आई हो। वह इससे अधिक और कुछ न कह सका। दिवाकर भी सुबोध के साथ ही उठ गया। उसने वहां पर और अधिक रुकना उचित न समझा।

नीता जो इतनी देर से इस नाटक को एक मौन दर्शक की भांति देख रही थी। तड़प कर बोली–आप स्पष्ट शब्दों में क्यों नहीं कह देते कि दिवाकर बाबू को मैं छोड़े जा रहा हूं। दोनों प्रेमी आपस मे सलाह कर लें।

जैसे भयंकर वज्रपात हुआ हो। दिवाकर व सुबोध दोनों ही इस बात से चौंके। यह प्रहार उस मौन की बोझिलता को बहुत देर तक झनझनाता रहा। उठता हुआ सुबोध फिर हताश होकर बैठ गया। दिवाकर में इतनी शक्ति भी शेष नहीं रही कि वह बैठ तो सके। मूक दृष्टि से वह सुबोध और नीता को ताकता रहा, ताकता रहा, निर्निमेष। न जाने वह कब तक ताकता कि नीता की अचानक फूट पड़ी रुलाई ने उसको इस स्थिति से अचानक एक झटका देकर उबार लिया। अब जैसे उसमे कहीं सोया हुआ साहस जाग उठा हो उसकी बुझती हुई आंखों मे मानो रोशनी की किरण दर किरण फूट पड़ी हो। उसका सोया हुआ दर्द जाग उठा। उसकी वाचालता मानो अंगड़ाई लेकर उठ बैठी हो। वह थोड़ा संयत और तीखे स्वर मे सुबोध को झझोड़कर बोला–सुबो, यह सब क्या गोरख-धन्धा है। उसने अनजान बन रहे सुबोध को टटोला।

सुबोध बहुत ही संजीदगी से नीता को ताकता रहा, ताकता रहा, फिर पता नहीं क्या हुआ कि उसने एक हिंस्र पशु की भांति हुंकार भरी और अचानक

नीता के गाल पर एक तीखा चांटा जड़ दिया। जिसकी आवाज गूंज गई। यह सब इतना अप्रत्याशित था कि दिवाकर ठगा सा खड़ा रहा। उसका चेहरा एक दम श्वेत हो गया मानो उसके सारे ही शरीर में से किसी ने उसका रक्त खींच लिया हो। नीता ने कोई भी प्रतिवाद नहीं किया वह कुर्सी से उठकर धम्म से पास में पड़े कोच पर पड गई और सुबकती रही। अचानक उसका सुबकना गहरी चुप्पी में बदल गया। आसू थम गए। मानो उसने रुदन से किनारा कर लिया हो। उसकी आखो की झील में एक गहरी पीड़ा का मौन उतर आया था।

सुबोध पहिले ही की भांति मुमुर्ष बना ताकता रहा। उसमें फिर वही पुराना मौन फिर साकार हो गया था।

दिवाकर ने यह सब देखकर समझ लिया था कि प्रारम्भ हो चुका है। वह यदि यहां और अधिक रुका तो शायद अनर्थ हो जाय। उसे अब अपने आने पर बहुत दुःख हो रहा था कि वह यहां आया ही क्यों था? कभी सुबोध मिलता तो पूछ लेता। उसने चुपचाप अपना सामान उठाया और चलने को उद्यत हुआ तो लपक कर विद्युत गति से नीता ने उसकी अटेची पकड़ ली और बोली-जाने से पूर्व मुझे इस कारा से मुक्त कराते जाओ।

दिवाकर खड़ा रह गया।

सुबोध में मानों पुनः हिंसता जाग उठी थी। वह तड़प कर बोला-नीला तुम सम्हल कर बात करो। पहिले ही तुमने मेरे मित्र का अपमान किया है। अब यह मत दुहराओ।

मैंने अपमान किया है या आपने। नीता तड़प कर बोली।

चुप रहो। सुबोध तड़प कर बोला।

चुप रहूं। मैं बोलती ही कब थी जो चुप रहूं।

दिवाकर ने निरीह आंखों से सुबोध को देखा, किन्तु सुबोध दिवाकर से आखें नहीं मिला सका। झुकी नजर किये हुए ही बोला- दिवू तुम रुक जाओ। मैं परेशान हूं और यदि मैं कुछ कर बैठूं या कह दूं तो बुरा न मानना भाई, मैं कितना परेशान हूं, इसे तुम नहीं जान पाओगे।

दिवाकर को अटेची रख देनी पड़ी। सुबोध की इस अपील मे बड़ी वेदना थी। वह अपने आपको और सयत न रख सका। सुबोध के कधे पकड कर वह बोला-सुबी तुम इतना कैसे सहते रहे। मुझे लिखा तक नही कि तुम मुझ पर अविश्वास करते थे। उसके अविश्वास शब्द पर सुबोध ने उसके मुंह पर हाथ रख

दिया और आकुल शब्दों में बोला–तुम पर अविश्वास करके मैं अपने ही अस्तित्व को नकारता क्या ?

नीता ने तुरंत तड़प कर कहा–यह आप पर अविश्वास करते रहे हों या नहीं मुझ पर तो करते ही रहे हैं।

सुबोध ने आर्द्र कण्ठ से कहा–मुझ पर अधिक अत्याचार न करो नीता मैं तुम पर या दिवू पर बिल्कुल अविश्वास नही करता। परन्तु क्या करूं मैं अपने आप पर विश्वास नही कर पा रहा।

अब वातावरण मे वार्ता के लिए एक क्षीण सा मार्ग बन गया था। मौन की वाष्प धीरे धीरे छट रही थी।

दिवाकर बोला–सुबो क्या मुझे अपना दुःख नहीं बताओगे। क्यों हुआ आखिर यह सब। कैसे हुआ ?

नीता ने बोलने के लिए मुह खोला ही था कि सुबोध ने उसे इशारे से चुप कराते हुए कहा–नीतू मुझे ही कह लेने दो। शायद मैं हल्का हो जाऊं यह कह कर।

इसी बीच श्यामा ने आकर बाधा दी कि सुबोध का टेलीफोन आया है। सुबोध उठकर साथ मे लगे आफिस के कमरे में चला गया।

दिवाकर ने पहली बार भरपूर निगाहों से नीता को ताका। नीता अस्त व्यस्त सी कोच पर पडी थी। गाल पर सुबोध की उंगलियों की छाप उभर आई थी। गालों पर आंसुओ का खार स्पष्ट उभर आया था। आखों में शेष गम धीमे धीमे पिघल रहा था। एक हल्की सी भार हीनता उसके मुखड़े पर शनैः शनैः उतर रही थी। दिवाकर ने पहिली बार यह अनुभव किया कि नीता तो वास्तव में प्रेम करने के ही लायक है। क्या देह यष्टि है। सुडौल काया, कही भी उसमें दोष नहीं। रंग अवश्य हल्का गंदमी, परन्तु नाक-नक्श तीखे। चेहरे पर मृदुलता। अंगों में एक तीखी सैक्स अपील। आज पहिली बार वह इस प्रकार नीता को देख रहा था। फिर स्वयं ग्लानि के अहसास से दब उठा। उसने धीरे से अपनी निगाहों को फिरा लिया।

नीता अपने विचार प्रवाह मे निमग्न थी। उसे इस बात का पता तक नही था कि दिवाकर आज उसे अन्य प्रकार की निगाहो से ताक रहा है।

दिवाकर ने उसे फिर चोरी से देखा। उसके मन मे कहीं बहुत गहरा दबा हुआ जानवर जाग रहा था। इस जानवर के अंश प्रत्येक में होते हैं, किन्तु कुछ लोग अपने संस्कार व संयम से उसे अपने अन्दर सुला देते हैं और कुछ उसके उसी रूप मे

अपना रूप प्राप्त कर लेते हैं। दिवाकर ने यही किया था। वह अपने दानव पर अपने संस्कार व संयम से विजय पा रहा था, किन्तु आज जैसे वह दानव नीता की चुटकी से जाग रहा है। वह अपने को धिक्कारता भी जाता था देखता भी जाता था। अपने को बहुत रोकना चाहता था परन्तु वह अपनी उस दुर्दमनीय लालसा का क्या करे जो शायद कभी कॉलेज में नीता के लिए अनजाने में जागी हो। आज वह नीता की तुलना गीता से कर रहा था। गीता जहां सागर के समान गहरी थी तो नीता चंचल नदी। हालांकि गीता का रंग और उसका मुख नीता से कहीं अधिक सुन्दर और मुखर था। उसकी देह यष्टि में भी कहीं दोष न था, किन्तु उसके व्यवहार में, अंग प्रदर्शन में सेक्स की वह खुली चुनौती नहीं थी जो नीता में थी। गीता ने बनना संवरना कभी न जाना। सामान्य सा पहिनावा, नित्य प्रति का एक ही हेयर स्टाइल जबकि नीता हर हफ्ते अपना स्टाइल बदलती थी। दोनों ही बड़े शहरों में पली व बढ़ी थी, परन्तु दोनों के रहन-सहन व विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर। इसीलिए तो दिवाकर ने पहिली ही दृष्टि में गीता को पसंद कर लिया था। यदि कभी वह उसे सजने संवरने के लिये कहता या जिद करता तो वह अपने बालों को खुला छोड़ देती और अधिक साधारण पहिनावा कर डालती और झुंझला कर कहती कि यह लो यह मेरा मूल केशविन्यास है। तब वह उसे और अच्छी लगने लगती।

नीता शायद पिछले दिनों से अपने को बदलने का प्रयास कर रही थी। सामान्य सी एक चोटी जिसमें कोई रंगीन रिबन आदि नहीं, हल्के रंग की धोती। कोई पाउडर की तह या लिपिस्टिक आदि नहीं। सामान्य पहिनावा, परन्तु उसमें भी उसकी शैली अलग। कपड़े सामान्य पर टाइट। धोती सामान्य पर कमर पर इस प्रकार बांधी गई कि नितम्बों का उभार साफ दिखे। आंचल इस प्रकार डाला हुआ कि उरोज का उभार साफ झलके। ऊपर से बदली नीता अन्दर से मानो अपनी ऑरिजिनलिटी में ही व्यस्त। यदि नीता की किसी बात से उसे चिढ़ थी तो उसके दिखावे से।

नीता ने करवट बदल कर जो देखा तो दिवाकर को अपनी ओर देखते हुए पाया। यूं यह तो नहीं था कि दिवाकर यहां आंखों पर पट्टी बांध कर आता हो, परन्तु वह कभी भी नीता को आंख भर कर नहीं देखता था। बात करता था, चहकता था, बहसें करता किन्तु सिवाय इसके कि क्यों नीता-जी-क्यों नीता जी के अलावा वह और कुछ नहीं कहता था नीता से।

आज जैसे वह आंखों ही आंखों में नीता को पी जाना चाहता था। नीता ने भी इसे अनुभव किया किन्तु वह भी पूर्व की भांति अपने आप में सिमटी नहीं।

पहले यदा-कदा एक या दो बार ऐसा हुआ भी तो वह स्वयं सिमटसी जाती थी और यदि कभी नीता ने दिवाकर को इस प्रकार कभी देखा था तो दिवाकर अपने आप मे सिमटसा जाता था। फिर आंखों में ही अपनी गलती की क्षमा हो जाती थी।

लेकिन नीता आज चाहती थी कि दिवाकर उसे आंखों से ही पी डाले। हालांकि वह जानती थी कि दिवाकर और सुबोध में, सुबोध ही अधिक सौंदर्य का अधिकारी है। वह लम्बा, भरा पूरा युवक है। उसका रग दिवाकर से कही अधिक साफ है। दिवाकर लम्बा अवश्य है, परन्तु उसकी देह यष्टि दुबली है चेहरे पर अतिरिक्त स्वास्थ्य की एक दृढता और जो सुनाई है वह सुबोध मे नही। यही अन्तर है दोनो मे।

सुबोध की आंखो में और दिवाकर की आखो मे भी अंतर है। सुबोध की आखें कभी किसी स्थान पर स्थिर नही रहती। उनमें एक शैतानी, एक चचलता हमेशा तैरती रहती है, उसकी आखे हमेशा जैसे कुछ टटोलती रहती है। दिवाकर की आखें शात, गहरी काली झील सी जिनमे जिज्ञासा की भूख हमेशा बलवती रहती है।

सुबोध हमेशा कहा करता था दिबू यदि किसी प्रकार की सम्पदा तुम्हारे पास है तो वह है तुम्हारा यह मुखड़ा और इस मुखड़े मे तुम्हारी ये आखे। वह नीता से हमेशा कहता था– नीता इस मेरे यार के पास जो आखें हैं उनसे बचकर रहना। यह मीना जैसी सुन्दरी को आंखों के जाल में बाध लाया है। नीता शरारत पूर्ण अदा के साथ चहकती– ओहो, देखे तुम्हारे मित्र, इनकी जैसी सैकड़ो आखें तो मेरे जूड़े मे जड़ी रहती हैं। फिर तीनो हो...... हो करके बेतहाशा हस पड़ते।

नीता भी दिवाकर की आखो में आज झांकते हुए यही सोच रही थी। शायद मुझे इनकी आखों ने ही बांध लिया है। वह भी मानों दिवाकर को आंखों से पी जाना चाहती थी। आज वह शायद उसे सचमुच में ही दिल दे बैठी थी। किन्तु उसके हृदय की असीम गहराइयो में कही सुबोध अड़ा बैठा था।

सुबोध के कदम कमरे की ओर आते सुनाई दिये। वह अब बहुत कुछ नॉर्मल हो गया था। उसके सर से मानो वह भार उतर गया जिसे वह पिछले तीन चार माहों से ढोता चला आ रहा था।

आते ही बोला– नीता हम अपनी राम कहानी फिर सुनाते रहेगे। पहले इस बेचारे दिबू के पेट का तो ख्याल करो। हमने तो चाय पी ली है, लेकिन इसे तो अभी पानी तक मयस्सर नहीं हुआ है।

दिवाकर भी मानों सोते से जाग उठा। उसने अपने बैग पर हाथ रखा तो उसमें रखा हुआ टिफिन कैरियर उसने महसूस कर लिया। वह बोला— नीता जी खाना बनाने का तकल्लुफ न करना, खाना मेरे साथ है। वह यात्रा में अपने विचार प्रवाह में ऐसा बहता रहा कि उसे खाने की सुधि ही न रही।

सुबोध बोला—भाई दिवू, तुम आ गए हो तो गर्म खाना तो मिल जाने दो।

नीता जाते-जाते रुक गई। शुष्क शब्दों में बोली— तो गोया कि अब तक मैंने आपको ठण्डा और बे स्वाद खाना ही खिलाया है। आप व्यंग्य करने के स्थान पर साफ बात क्यों नहीं करते। इस प्रकार चुटकियाँ क्यों ले रहे हैं।

दिवाकर ने सोचा— लो खेल फिर बिगड़ गया। सुबोध का अब फिर मूड ऑफ हो जावेगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

सुबोध ने जाती हुई नीता का पल्लू थाम लिया और बड़ी ही संजीदगी से बोला— यह ठीक है कि मैं तुम्हारे लिए शायद इन दिनों अच्छा न लगा होऊँ, लेकिन क्या यह गलत है कि विगत तीन माहों में जो जीवन हमने जिया है वह एक सामान्य जीवन था ?

नीता ने अपना पल्ला छुड़ाते हुए कहा— तो जनाब इसमें मेरा क्या दोष। आप स्वयं ही समय पर खाना न खाएँ तो इसमें मेरा क्या दोष।

समझौता सा करते हुए सुबोध बोला— अच्छा दोष मेरा ही सही नीतू लेकिन क्या कभी मैंने तुमसे यह कहा था कि तुम अपने आप को इस प्रकार बदल डालो कि हमारा जीवन महज एक बोझ बन कर रह जाय। मेरे अकेले का ही दोष था क्या ? कभी मुझे नॉर्मल करने का प्रयास तुमने किया।

नीता ने जाते जाते कहा— शायद मैं खुद नहीं नॉर्मल थी।

दोनों मित्रों ने आपस में एक दूसरे को देखा और फिर चुपचाप अलग-अलग दिशाओं में देखने लगे।

नीता जो किसी कारण वश उस कमरे में लौट कर आई थी तो दिवाकर को ख्याल आया कि खाना अभी बैग में ही है। उसने टिफिन कैरियर नीता की ओर बढ़ा दिया। सुबोध ने जब यह देखा तो उसने नीता से कहा— इसे भी ले जाओ। गर्म कर लेना और अब तुम खाना क्या बना पाओगी। श्यामा को भेजकर होटल से खाना मंगवा लो।

नीता बोली— शायद आप अब भी यही चाहते हैं कि पिछले दिनों की पुनरावृत्ति हो।

सुबोध ठण्डे लहजे में बोला– तुम्हें शायद परेशानी हो ?

नीता का तीखा उत्तर था– मै तो शायद अपने आपको नॉर्मल कर सकूं परन्तु लगता है आप न तो स्वयं नॉर्मल होगे और न मुझे ही नॉर्मल होने देंगे।

सुबोध शांत स्वर मे बोला– जैसा तुम चाहो। मुझे तो तुम्हारा ख्याल था।

नीता बिना उत्तर दिये तुनक कर चली गई।

थोड़ा रुक कर सुबोध भी अंदर चला गया। शायद समझौते के आसार नजर आ रहे थे। दिवाकर को अपने मन पर से एक बोझ सा उतरता अनुभव हुआ। उसे लगा कि शायद उसका आना सार्थक हुआ।

भोजन करते समय सुबोध प्रसन्न नजर आ रहा था। नीता भी हौले-हौले मुस्करा उठती थी। बार-बार उसका हाथ उस कपोल पर चला आता था, जहां कुछ घटे पूर्व सुबोध के हिंस्र पुरुष ने अपनी छाप छोडी थी। सुबोध इस बात को बहुत देर से नोट कर रहा था अंत में वह बोला– नीतू क्या चाटा बहुत जोर का पड गया ······

नीता ने शरारत पूर्ण स्वर मे कहा– नही जी वह तो फूल सा लगा था।

सुबोध ने अपना दोष स्वीकारते हुए कहा– नीतू मै भावावेश मे आकर ऐसा कर बैठा था, आशा है तुम इसे भुलाने का प्रयास करोगी।

नीता ने शांत वाणी में कहा– सुबोध, औरत तो हिन्दुस्तान मे पैदा ही इसलिए होती है कि वह सब कुछ भूलती चली जाय। यहां तक कि वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाय कि वह क्या थी ? और पुरुष हमेशा यह याद रखे कि वह है, उसका अस्तित्व है, वही सर्वेसर्वा है। मै यह रोष में नही कह रही। यह एक हकीकत है कि वह जब तक अपने आपको भूल नही जायेगी। वह अपने आप में सार्थक न होगी, लेकिन भूलने की क्रिया मे, उसे मैं समझती हूं न जाने कितनी सीढ़ियां, कितने जन्म पार करने होगे। आखिर उसका भूलना हर उस पुरुष के साथ तो नही हो सकता, जिसे वह अपनाती है। हो सकता है वह इस जन्म मे जिसे अपना रही है, वह उसका वह पुरुष न हो जिसमें उसे आत्मसात होना है। उसे तो जन्म जन्म यह खोज करनी पड़ेगी। चाहे भारत मे नारी कितनी ही स्वतन्त्र हो जाय वह अपने भोलेपन से हर बार ठगी जाती है। फिर भारत ही क्यो नारी तो सभी स्थानों पर पूजार्ह होने के बाद भी मातृत्व की मजबूरी के कारण ठगी जायेगी। उसे जन्म-जन्म मे यह खोज करनी पड़ेगी कि उसका अभीष्ट पुरुष कौनसा है ?

थोड़ी देर रुक कर एक गूढ दृष्टि उसने दोनो पुरुषों पर डाली जो आश्चर्य से मुंह फाड़े उसकी बातें सुन रहे थे। उसने एक एक चपाती उनकी थालियों में और डालकर उन्हें चेताया कि खाना भी खाना है। फिर एक दीर्घ श्वांस लेकर आगे उसने कहा– कभी कभी उसे अभीष्ट पुरुष तब मिलता है जब वह किसी और का चुनाव कर चुकी होती है।

इसे सुनकर दोनो मित्र एक साथ चौंके।

उसने आगे कहा– लेकिन यदि वह नारी है तो उसे सब कुछ सहते हुए, एक लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और क्या पता यह क्रिया फिर फिर दुहराती रहे। सुबी, मैं तो दोषों से परिपूर्ण एक अधूरी नारी हूं तुम मुझे भूलने के लिए कहते हो तो शायद मैं बहुत कुछ भूल जाना चाहती हूं किन्तु क्या करूं, मैं शायद ऐसा न भी कर पाऊँ। नारी का दूसरा रूप विकृति भी है जो ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और युद्ध बनकर पुरुष में फूट उठती है। मैं तो यही समझती हूं कि शायद नारी न होती तो पुरुष मात्र में इतना विद्वेष भी न पनपता।

फिर वह थकी सी निढाल होकर कुर्सी की पीठ से लग गई दोनों मित्र कुछ देर तक शांत भोजन करते रहे। फिर सुबोध बोला– नीतू आज मैंने जो रूप तुम्हारा देखा है। उसने मुझे बहुत प्रभावित किया है। आज की यह मीमांसक नीतू अब तक कहां थी ?

नीता ने आखें बंद किए हुए ही कहा, नीता कहां नहीं थी हर जगह थी। महज उसके अन्वेषक नहीं थे और अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ा—

जिन खोजा तिन पाईयां, गहरे पानी पैठ .. .. और इसे पूरा किया अचानक दिवाकर ने हौं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।

नीता झटके से जैसे जाग उठी हो ऐसे चौंकी। सुबोध मुस्करा भर दिया। दिवाकर आखिरी निवाला निगलते हुए बोला– नीता जी तुमने बात कही लेकिन वह अधूरी है। तुम्हारी बातें एकतरफा ही रही पुरुष यदि यह कहे कि वह स्वयं नारी में आत्मसात होने का उपक्रम करता है तो यह गलत न होगा, लेकिन हां मैं दूसरे जन्मों की बात नहीं जानता उसे तो इसी जीवन में यह सब भोगना पड़ता है। वह यदि अपनी नारी में विलीन होने की बात नहीं सोच पाता तो स्वयं में जीवित ही कहां है ? तुम्हारा यह आरोप कि पुरुष अपने 'मैं' मे डूबा हुआ दम्भी प्राणी है तो यह शायद तुम्हारी भूल हो। उसे भी तो अपने को बहुत कुछ बदलना पड़ता है फिर जीवन संघर्ष को भोगने का श्रेय तो पुरुष को ही मिलता है मैं

विदेशों की बात नहीं जानता परन्तु अपने देश की बात जानता हूं कि यहां यदि नारी पुरुष रूपी मशीन का ईंधन है तो पुरुष खटने वाली मशीन। जो अपने पुर्जे दिन रात घिसता हुआ अंत में नष्ट हो जाता है। फिर हम विदेशों को भी क्यों छोड़ें। मुझे तो सभी स्थानों पर पुरुषों का सक्रिय आधिपत्य नजर आता है।

नीता ने शांत स्वर में कहा—यही तो आपका दम्भ है। यदि नारी इस संसार के रजत पट पर कहीं नहीं है तो क्या हुआ, वह तो पुरुष के अणु अणु में व्याप्त होकर उसे चला रही है।

सुबोध ने बहुत ही धीरे से कहा— दिवू, नीतू— यह सब मैं तुम्हारी बहसों से बकवास समझने लगा हूं। केवल सहयोगी समझौते की भावना का ही अस्तित्व है। अन्यथा बाकी सब जड़ है, वह चेतन नहीं।

नीता ने उठते उठते कहा— अपने-अपने विचार हैं। अपने-अपने रास्ते हैं। उसने श्यामा को बुलाकर कहा— ये बर्तन ले जाओ। महरी से कहना कि सांझ को भले ही न आये। अब तुम भी जा सकते हो।

सुबोध हाथ साफ करते हुए बोला— अच्छा दिवू मैं थोड़ा बाजार तक हो आऊं। एक पार्टी से बातें करनी हैं। अभी थोड़ी देर पहिले उनका टेलीफोन भी आया था, किन्तु उस पर पूरी बातें हो नहीं सकी थीं।

दिवाकर अकेला यहां रुकना नहीं चाहता था। अपनी वार्ता के दौरान जैसे नीता ने अपना पक्ष स्पष्ट कर दिया था। वह बोला— यदि हर्ज न हो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूं।

सुबोध ने उसका कन्धा थामकर बड़ी संजीदगी से कहा- नीता से घबरा रहे हो। मुझे देखो मैंने कितना भोगा है और सचमुच जब भरपूर निगाहों से दिवाकर ने सुबोध को देखा तो उसने पाया कि उसकी आंखों के नीचे काले घेरे साफ नजर आ रहे थे। वह कुछ बोल न सका। सुबोध ने ही फिर कहा— रात्रि को ही मैं अब सब बयान करूंगा। मेरी ओर से शंका न करना। तुम मेरे दिल के आईने में बेदाग हो और यह कहकर बड़ी तेजी से चला गया।

उसके बाद नीता आई और सुबोध को वहां न पाकर बोली-क्या चले गए?

दिवाकर ने कहा— हां किसी पार्टी से बात करनी थी।

नीता ने केवल अच्छा कहा।

दिवाकर और वह बहुत देर तक शांत बैठे रहे। दिवाकर क्या बात करे। उसकी यह समझ में नहीं आ रहा था। फिर जब उसे और कुछ न सूझा तो उसने

उचित समझा कि वह नीता का पत्र वापिस कर दे। एक औरत के लिए उसके प्रेम पत्र लौटा देना जहा एक ओर अपराध है, वहा दूसरी ओर पवित्र कार्य भी। जिसमें विवाहित नारी का पत्र रखने का तो उसे कतई अधिकार नहीं है। ऐसा विचार कर उसने पत्र अपनी जेब से निकाला और नीता के सामने रख दिया।

पत्र देखकर नीता चौंकी। उसने निरीह आंखो से दिवाकर को देखा फिर वह अपने मे सिमटती सी बोली— दिवू, मुझे राह बताओ मैं क्या करूं? यह उच्चारण दिवाकर को बडा अटपटा लगा। इतनी आत्मीयता से यह कहा गया था कि दिवाकर अचकचा गया। यह परम्पराओ से हट कर था। आज तक नीता ने उसे इस प्रकार से सम्बोधित नही किया था। फिर भी उसे उत्तर तो देना ही था। अपने अन्दर बिखरते साहस को उसने बटोरा और बोला नीता तुम्हें क्या हो गया है? क्या तुम सुबी से ऊब गयी हो या सुबी तुम पर अधिक अत्याचार करता है?

नीता का थरथराता स्वर केवल इतना ही कह पाया— ऐसा नही है।

फिर क्या है? दिवाकर बोला— फिर क्यों तुम दोनो मे यह दीवार खडी हुई, इस प्रकार का अटपटा पत्र तुमने क्यो लिखा। सोचो जरा यदि किसी प्रकार यह पत्र गीता को मिल जाता तो क्या होता? वह क्या सोचती? क्या मेरी हरी-भरी गृहस्थी के लिए यह चिंगारी साबित न होता।

नीता ने अपराधिनी के समान सकपकाते हुए कहा— दिवू मैंने सब कुछ सोचा था, लेकिन स्थिति बहुत ही बदतर होती जा रही थी। यदि तुम आज भी न आते तो शायद हम मे से कोई एक ही तुम्हे जिन्दा मिलता।

यह सुनकर तो दिवाकर को साप सा सूंघ गया। वह ठगा सा नीता को देखता रहा।

नीता ने ही फिर कहा— मैंने केवल उनसे इतना ही एक बार बातचीत के दौरान कहा था कि आपके मित्र दिवाकर महोदय मुझे बड़े अच्छे लगते हैं। देखिए, वे न नशा करते है न किसी प्रकार का फैशन। यह बात आई गई हो गई लेकिन उनमे कही शंका का बीज बो गई और मुझ मे अचानकही परिवर्तन हो गया। मैं अपने को सामान्य करने लगी। सभी श्रृंगार की वस्तुएं मैं क्रमशः छोड़ने लगी। कभी तुम्हारी याद भर मुझे आती थी कि तुम कितने अच्छे हो। कही भी तो प्रेम हो ऐसा मुझे नही लगता, पर नही यह मेरी भूल थी। वे अपने आप मे, मुझमे परिवर्तन देखकर सिमटते चले गए और मुझमे तुम्हें चाहने की इच्छा उतनी ही तीव्रतर होती गई। सुबी मे कोई कमी हो या वह मुझसे कोई प्रेम न करता हो, ऐसा कही भी तो मुझे नही लगता। परन्तु अपने में हो रहे परिवर्तन का मे क्या करूं? वे

इसे देखते थे और जलते थे। जब कभी मैं फैशन के अनुसार अपने को सजा लेती वह मुस्कराते लेकिन फिर मुझे लगता कि उनकी मुस्कान में तुम मुझ पर हंस रहे हो। मैं फिर वही दूसरा जीवन जीने लगती और वे बुझ से जाते।

नीता ने लम्बी श्वांस खींच कर चुप्पी साध ली।

दिवाकर सोच में डूब गया। आखिर इन छोटी छोटी बातों से जीवन में कड़ुवाहट इस प्रकार क्यों भर जाती है? उसे स्पष्ट लग रहा था कि न इसमें नीता का दोष है न सुबोध का और न उसका अपना। प्रत्येक में सोई हुई भावनायें होती हैं जो समय पाकर बलवती हो उठती हैं। उनका समय पर शमन न हो सके तो परिवार इस उठ रही लपट में अवश्य भुलस जायेगा।

नीता ने लम्बी स्वांस भर कर कहा— क्या सोच रहे हो? मुझे बताओ न आखिर इस सब का क्या परिणाम होगा? क्या सुबी इसी तरह घुटते रहेंगे?

दिवाकर ने एक लम्बी श्वांस ली और थके-थके अंदाज में बोला— नीनू गलती तुम्हारी है। तुम्हें यदि बदलना ही था तो पहले सुबी से प्रारम्भ करती। मेरा रूप तो तुम सुबी में भी पा सकती थीं।

नीता ने एक आह भर कर कहा— मैं उन्हें क्या बदलती, उन्होंने स्वयं अपने आपको बदलने का भारी प्रयत्न किया। चाय छोड़ी, शराब छोड़ी, सिगरेट छोड़ी, परन्तु जब वे सारी सारी रात इनकी कमी में कराहते रहते तो मेरे अन्दर की नारी कहां चली जाती। मैं स्वयं साकी बनती और उन्हें जबरदस्ती ढाल ढाल कर पिलाती। कुछ दिन खुशियां आती और फिर मुझ पर अपने को बदलने का, तुम्हारे अनुरूप ढालने का भूत सवार हो जाता।

आखिर ऐसा क्यों होता था? मैं स्वयं नहीं जानती थी। बस एक दुर्दमनीय भावना मुझ में ऐंठती रहती थी— कि आखिर इन्हीं की एक थाली में खाने वाले दिवाकर हैं फिर ये वैसे क्यों नहीं? मैं ही वैसा बन सकती हूं तो बनूं और फिर अपने को बदलने बैठ जाती। यह हम दोनों में शीत-युद्ध चल रहा है। जो बराबर हम दोनों को खाए जा रहा है।

दिवाकर इसका क्या उत्तर दे। उसको तो यह अनुभव ही नहीं था कि कोई किसी की सादगी से ही प्रभावित होकर उससे प्रेम कर सकता है जब कि वह पहले इस प्रकार की सादगी से नफरत करता रहा हो। उसने एक ही निष्कर्ष निकाला कि या तो ये लोग अपनी इस दिखावे की भावना से ऊब जाते हैं या फिर नीता के हृदय में कहीं गहरे में दिवाकर बैठा है। इस विचार मात्र से ही वह कांप

उठा। यदि ऐसा है तो अब तक वह अपने मित्र के प्रति अत्याचार करता रहा है। उसे उनके रास्ते से हटना होगा। शायद उसे इसके लिए अपनी अब तक अर्जित सम्पूर्ण सम्पदा की आहुति भी देनी पड़ जाय।

उसे विचारो मे डूबा देख कर नीता बोली– दिवू, अब लगता है पानी सर मे गुजरने वाला है।

यह सुनकर ही दिवाकर कांप उठा। उसने नीता की आंखो मे झांका तो वहा उसे अपने लिए सम्पूर्ण समर्पण के भाव दिखाई दिए। जिन्हें देखकर वह और अधिक सकपका उठा। अब क्या करे वह। वह उत्तेजना में उठकर टहलने लगा।

नीता उसका इस प्रकार टहलना देखकर बोली– तुम बस सुन भर रहे हो। कहते कुछ नही। उसने दिवाकर का हाथ पकड लिया और अपने ही सोफे पर उसे बिठा लिया। यह सब इतनी तेजी के साथ हुआ कि दिवाकर कुछ कर भी न सका। वह केवल काप कर रह गया। उसके माथे पर पसीने की बून्दे झलक आई। नीता को पता नही जाने क्या सूझा कि उसने अपना सर दिवाकर के कधे से लगा दिया और फिर धीरे धीरे सुबक उठी। सुबकते सुबकते ही कहने लगी– तुम... मेरी... हरी... भरी गृहस्थी मे क्यों आए? दिवाकर क्या कहे। उसके सर पर हाथ फिराता रहा। वह एक दम मशीन के समान जड था, केवल हाथ भर चल रहा था। यदि उसके शरीर या मन में कही कोई चेतना थी तो इतनी ही कि यह जो कुछ हो रहा है, गलत हो रहा है परन्तु उसमे इतनी चेतना नही थी कि वह यहा से परे हट जाय।

तभी नीता बोली– (उसके सुबकने के ज्वार में स्थिरता आ रही थी) मैं तुम्हारे जीवन में गीता बन कर पहले क्यो नही आई। काश, और उसने एक लम्बी श्वांस खीची।

गीता के नाम ने ही चमत्कार किया। दिवाकर को जैसे अंगारा छू गया हो। वह तडपकर उठा और एक ओर खडा हो गया, फिर कुछ क्रुद्ध निगाहों से नीता को घूरकर बोला–नीता होश मे आओ। तुम मेरे मित्र की पत्नि हो। आखिर न तो तुम्हे और न मुझे यह शोभा देता है। सुबोध को सम्हालना तुम्हारा फर्ज है।

नीता ने बडी निरीह निगाहो से उसे देखा जैसे वह उनसे क्षमा माग रही हो और फिर वह रुलाई न रोक पाने के कारण अदर शयन कक्ष मे भाग गई।

बाहर बैठे दिवाकर को बस नीता की सुबकियां ही सुबकियां अपने चारो ओर बिखरती सुनाई पड़ रही थी।

४

संध्या के लगभग सुबोध लौटा। अंधेरा हो चुका था, लेकिन ड्राइङ्ग रूम मे अभी रोशनी नही की गई थी। उसके हृदय मे शंका ने सर उठाया पर वह वहीं थम गया। उसे दिवाकर पर विश्वास था। वह हर परिस्थिति मे उसे परख कर देख चुका था कि वह खरा कंचन है।

उसने ड्राइङ्ग रूम में आकर आहिस्ते से रोशनी की तो दिवाकर मानो सोते से जागा।

सुबोध ने देखा कि ड्राइङ्ग रूम मे दिवाकर एकाकी अंधेरे मे छत को घूर रहा था उसने नीता के लिए पूछा तो दिवाकर ने बैडरूम की ओर इशारा कर दिया। सुबोध बिना एक भी शब्द बोले बैडरूम में चला गया रोशनी की तो देखा नीता रोते रोते सो गई है। तकिए का एक भाग आंसुओ से भीगा हुआ है। वह बहुत ही हल्के कदमो से बाहर आ गया।

दिवाकर की ओर देख कर सुबोध बोला— बस दिवू मैं पिछले कई महीनो से यही भोग रहा हू। क्या करूं समझ मे नही आता।

दिवाकर ने एक लम्बी सांस ली। दोनो मित्र एक दूसरे को काफी देर तक आपस मे उलझी निगाहों से घूरते रहे। फिर एक निश्चय सा कर दिवाकर उठा। बैडरूम के बाहर से ही वह बोला नीता जी— नीता जी। नीता ने एक करवट बदली। फिर आखों पर रोशनी पडने से आखें खोल दी। बाहर सुबोध को आया जान तेजी से उठी और बिना बोले ही तेजी से गुसल में चली गई।

नीता के जगाने के बाद दिवाकर बोला— सुबी, मैं सारी स्थिति से वाकिफ हो ही चुका हूं। अब मुझे चलने की आज्ञा दो। जो भी बस या ट्रेन उपलब्ध होगी मैं उसी से चला जाऊंगा।

सुबोध ने चौंक कर कहा— क्या कहते हो ? अभी चले जाओगे दिवू ! मुझे इस प्रकार अधर मे लटका छोड़कर। वह कुछ देर चुप रहा और फिर बोला— हां दिवू तुम मेरे साथ आखिर कब तक रह सकते हो।

दिवाकर उसके आतुर कण्ठ को सुनकर सकपका गया। आखिर वह क्या करे ? उसका यहां रहना नीता को और अधिक अव्यवस्थित कर देगा। हालांकि सुबोध अधिकाधिक नॉर्मल हो जायेगा। फिर उसकी भी तो अपनी जिम्मेदारियां हैं।

उसे चुप देखकर सुबोध बोला— दिवू ठीक है चले जाना। रात्रि वाली गाड़ी ही अब तुम्हें मिलेगी। तब तक तो यहां बैठो। हम कुछ तो इस समस्या पर सोचें। आखिर कोई तो हल होगा।

नीता गुसल से ताजा होकर आई थी। उसके चेहरे पर ताजगी की चमक विद्यमान थी। उसने सुबोध की ओर मुखातिब होकर पूछा— क्या खाने का प्रबंध करूं। श्यामा को तो सांझ को आने को मना कर दिया है, महरी भी नहीं आयेगी।

यह उन दोनों का नियम था कि रविवार के दिन दोनों नौकरों को वे अवकाश देते थे और उस दिन या तो नीता स्वयं खाना तैयार करती थी या होटल से मंगाया जाता था। किन्तु विगत माहों से उनमें जो तनाव आ गया था, उसके कारण दोनों नौकरों को सुबोध रविवार को भी रोक रहा था। आज नीता का मूड बदल जाने के कारण उन दोनों को कई माह बाद रविवार का आधा अवकाश मिल पाया था।

नीता की बात सुनकर सुबोध ने दिवाकर की ओर ताका। दिवाकर ने कहा— सुबोध मैं तो खाना खाऊंगा नहीं। अभी अभी कुछ घंटे पहिले ही खाया है।

सुबोध ने भी यही उत्तर दिया, परन्तु वह नीता से यह पूछना न भूला कि वह भी खायेगी या नहीं।

नीता ने वास्तविक मुस्कान के साथ कहा— जैसा दोनों श्रीमान् चाहें। मैं तो हुक्म की गुलाम हूं।

यदि यह बात उसने मुस्करा कर न कही होती तो शायद फिर से तनाव पैदा हो जाता। सुबोध ने यह सुना तो मुस्करा दिया और बोला नीतू क्या तुम्हारा पेट हमारे पेट के भरे रहने से ही भरा रहेगा।

नीता ने फिर मुस्करा कर उत्तर दिया— नहीं यह तो नहीं कहती, परन्तु भूखी भूख तो संक्रामक होती है। एक साथी को लगे तो दूसरे को भी लग आती है।

दोनों साथी मुस्करा पड़े।

दूर से बड़ी हल्की टेलीफोन की घंटी की आवाज आ रही थी। नीता ने उसे सुना तो वह बोली– जाइये आपका टेलीफोन आपको पुकार रहा है।

सुबोध चला गया। नीता दिवाकर की ओर एक प्रश्न सूचक चितवन डाल कर चली गई।

सुबोध वहीं से चिल्ला रहा था– नीतू...नीतू यह तुम्हारी सहेली, तुम्हें बुला रही है।

यह आवाज नीता तक पहुँचना मुश्किल था। वह अन्दर के कमरे मे थी और ऑफिस काफी दूर था। दिवाकर ने ही नीता को बुलाना उचित समझा। वह अंदर पहुँचा तो देखा कि नीता शृंगार मेज के सामने बैठी है। उसने इस समय पेटीकोट व ब्लाउज ही पहन रखा था इस अवस्था मे वह उसके नजदीक नही जाना चाहता था। उसने पीछे हटने का उपक्रम किया तब तक शीशे मे नीता उसे देख चुकी थी। रिवाल्विंग चेयर को घुमाकर उसने पूछा– "कहिए" यह कहिए बहुत ही अदा के साथ कहा गया था। दिवाकर सकपका उठा। जल्दी से बोला– तुम्हारा फोन आया है। और बड़ी तेजी से मुड़कर चला आया। नीता की हंसी रजत घण्टिका सी खिल पड़ी।

नीता फोन अटेण्ड करके आई तो चहक रही थी। सुबोध से बोली– यदि आप लोग फील न करें तो मैं लेट शो मे मिसेज घोष के साथ चली जाऊं। सुबोध ने हंसकर कहा– मैं आपको आज्ञा हूं। मेरी तो खुशी का ठिकाना नही है कि आप खुश होकर आज कम से कम शो में जाने की पूछ रही है।

नीता के चेहरे पर यह सुनकर विषाद की एक हल्की लहर पल भर को छाई पर फिर वह मुस्करा कर बोली– चलिए आपको खुशी तो हुई और वह तेजी से अपने शृंगार कक्ष मे चली गई।

सुबोध ने एक लम्बी सांस खींच कर कहा– चलो बला टली। इसका पता नही चलता कि यह कब पल में तोला और पल मे माशा हो जाय।

दिवाकर ने भी निवृत्ति की सांस खींच कर कहा– चलो इस अंतराल में तुम कुछ कह तो सकोगे। वरना नीता के रहते हुए यह सम्भव ही नही था।

सुबोध बोला– अरे नहीं, मैं इस स्थिति पर पहिले ही विचार कर चुका था। हम ही यहां से शो का बहाना करके चलते।

और नीता साथ जाने को कहती तो– दिवाकर ने शंका प्रकट की।

फिर जो होता सो देखा जाता यार। सुबोध में उल्लास लौट रहा था। शायद यह नीता के परिवर्तन का परिणाम था।

नीता जब सज-धज कर निकली तब पुरानी आदत के अनुसार टिपटॉप थी। चुस्त स्लीवलेस ब्लाउज, भड़कीले लाल रंग की कांजीवरम् की साड़ी, इसी रंग के जूते और मेकअप का मैचिंग कलर भी यही। सुबोध उसे देखकर फड़क उठा और अनायास ही उसके मुंह से निकला– वाह।

नीता एक मस्त चितवन डालकर मस्त चाल से चली गई। दिवाकर पल में तोला और पल में माशा सुन्दरी को जाता देखता रहा और अचानक ही कह उठा।

वो चले गए कयामत बन कर–
पता नही कितने अब फना होंगे।

सुबोध ने दिवाकर को ऐसे देखा– जैसे वह किसी अपरिचित को देख रहा हो। उसने बहुत दिनों बाद यह शेर उसके मुंह से सुना था। वह कॉलेज में भी अक्सर सुबोध और नीता को साथ-साथ देख कर इसे पढ़ा करता था। तब वह मुंह बिचका कर कहता था। आज जैसे वह कहीं बिंध गया हो, इस प्रकार कह रहा था।

वे दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे। सोचते रहे क्या कहें ? अंत में दिवाकर ने ही बात प्रारम्भ करने के लिए पूछा– अच्छा सुबी यह बताओ कि तुमने मुझे पत्र क्यों नहीं लिखे ? जो कुछ यहां हो रहा था, उसमें मैं अवगत कैसे होता यदि यहां न आता तो।

वह नीता के पत्र की बात साफ छुपा गया।

सुबोध उसे निरीहता पूर्वक देखता रहा। उसने कुछ कहा नहीं वह उठा और एक ओर रखी टोकरी उठा लाया फिर उसे फर्श पर उलट दिया। दिवाकर ने देखा कि वहां फटे हुए पत्रों के अनगिनत टुकड़ों का ढेर लग गया है। उसे समझने में देर न लगी कि वह परिस्थिति पर पत्र लिखे जाते रहे हैं किन्तु वे मन स्थिति के ठीक न रहने के कारण डाले न जा सके वरन फाड़े जाते रहे।

सुबोध ने दिवाकर की आंखों में झांक कर कहा– देख लिया।

दिवाकर बहुत देर तक उस ढेर को घूरता रहा फिर सहमें शब्दों में बोला– सुबी क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं था कि मैं तुम्हारे गलत से गलत पत्र को भी पाकर तुम्हारे पास न आता या तुमसे कट कर अलग हो जाता।

सुबोध ने बहुत ही मंद स्वर में कहा, जैसे इतना सब बोलने के लिए वह साहस जुटा रहा हो, मैंने यह तो नही कहा।

दिवाकर ने बात आगे बढ़ाई– फिर क्या बात थी कि तुमने मुझे दो पंक्ति भी न लिख कर भेजी।

सुबोध ने जमीन की ओर ताकते हुए कहा– मैं तुम्हें कैसे लिखता। जब स्वयं अपने पर ही विश्वासहीनता की दशा मे था, तब क्या यह आवश्यक नही था कि मैं तुम पर भी अविश्वास न करता। दिवू, तुम क्या जानो मैं इन तीन माहो मे क्या क्या भोगता रहा हूं। बीसों बार तुम पर भी अविश्वास हुआ। नीता पर भी झुंझलाहट आई, हर बार परन्तु तुम लोगो से ईर्ष्या करने के अतिरिक्त मैं और कुछ न कर सका। अपने में ही घुटता रहा। बीसो पत्रों मे तुम्हे लिखा कि नीता तुम्हारी धरोहर है, नीता तुम्हारी है, आकर सम्भाल लो पर इतना साहस न था कि उन पत्रों को तुम्हे पोस्ट कर देता, आफ्टरआल मैं तुम्हे जानता था। फिर प्रश्न केवल नीता, मेरा अथवा तुम्हारा न था। एक और अनजान जीवन भी इस दुख:द प्रकरण से जुड़ा हुआ था।

वह कुछ देर तक तो चुप रहा और दिवाकर को देखता रहा। फिर बोला– और वह जीवन था गीता का।

दिवाकर ने अनुभव किया कि सुबोध ने गीता का नाम किस आदर और सम्मान के साथ लिया है। दिवाकर ने ही पूछा– क्योंकि सुबोध तो एकदम दम साध चुप्पी लगा गया था– सुबी फिर भी तुम मुझे किसी न किसी प्रकार का इशारा भर तो कर सकते थे। फिर इस स्थिति तक पहुंचने से पूर्व कुछ न कुछ तो तुम्हे करना ही चाहिए था।

सुबोध की आखो मे पीड़ा उतर आई। वह बोला– दिवू कहना आसान होता है, करना नही। मैं नीता के लिए इन दिनो तुम्हे ही जी रहा था, लेकिन जब जब मैं तुम्हें जीने का प्रयास करता तो नीता मुझे जीने का प्रयास करती और इस कशमकश मे हम एक दूसरे को ही नही जी सके। अब लगता है इस संघर्ष मे या तो मैं हार गया हूं या नीता, कौन कहे? एक लम्बी श्वास लेकर वह चुप हो गया।

दिवाकर भी कुछ न कह सका।

एक लम्बी चुप के बाद दिवाकर ही बोला– सुबी, अब लगता है, मुझे तुम दोनो के लिए, तुम लोगो को जीना होगा। नीता तुम्हारी रहे यह मैं हमेशा

से चाहता रहा हूं, लेकिन नीता का साथ देने से पूर्व, यदि तुम्हें याद हो तो मैंने कहा था– "सुबी, नीता को बहुत सम्हाल कर रखना यह बहुत ही नाजुक शीशा है।" पर शायद तुम उस समय मेरी बात नही समझ पाये थे।

सुबोध बोला– शायद तुम ठीक कहते हो। मैंने यह भूल की हो...

उसकी बात को लपक कर दिवाकर बोला– तुम फिर भूल रहे हो, नीता क्या तुम्हे नही चाहती?

क्यों नही, वह मुझे न चाहती हो, यह तो मैंने नही कहा, या मैं उसे नही चाहता हू यह भी मैंने नही कहा, परन्तु क्या करूं, इस दिल का जो बार बार यही कहता है कि अब तुम नीता के योग्य नही रहे। जब नीता तुम्हारी आदतो से प्रेम करती हो उसके अनुसार बदल सकती हो तो क्या फिर तुम नीता को खुश करने के लिए, दिवाकर का सा आचरण नही कर सकते, महज अभिनय भी नही, परन्तु जब जब मैंने ऐसा किया। नीता ने मेरे अनुरूप बदलना प्रारम्भ कर दिया। आखिर मुझ मे अविश्वास क्यो नही पनपता, परन्तु मैंने अपने को ही तो सजा दी और किसी को तो नही।

यही तुमने भूल की सुबी। यदि तुम स्पष्ट शब्दो मे नीता से यह कह देते कि तुम चाहे दिवू की आदतें पसन्द करो, परन्तु मैं तो अब नही बदल सकता, परंतु तुममे प्रारम्भ से ही कही कमी थी, कमजोरी थी, शंका थी कि कही नीता दिवाकर की ओर झुक न जाय। इसीलिए तुम उसे जीतने के लिए मुझे जीने का प्रयास करते रहे।

तुम ठीक कहते हो दिवू शायद यही बात रही हो।

फिर सुबी तुमने अपने अन्दर नासूर पाल लिया। नीता ने मुझे जीने का शायद ही प्रयास किया था। वह तो अपनी इस चकाचौंध से ऊब चुकी थी। उसके सामने दिवाकर तो महज एक मार्ग सूचक नक्शे के रूप मे था। यदि दिवाकर तुम्हारा ऐसा मित्र न होता तो कोई भी और दिवाकर बनकर आता या न भी आता वह अपनी ऊब का रास्ता तो खोजती ही, लेकिन मित्र तुममें कही चोर बैठा था। तुम नीता से नही कही दिवाकर से भयभीत थे और परिणाम यह हुआ कि ज्यों ज्यो तुम उसे जीतना चाहते गए वह एक सामान्य दिवाकर से परे हटती गई और विशिष्ट दिवाकर को जीती चली गई।

एक उड़ती सी निगाह उसने सुबोध पर डाली, जो दृष्टि झुकाये सुन रहा था। बात जारी रखते हुए उसने कहा– सुबी, अब स्थिति नाजुक हो गई है तो बुरी

तरह बौखला उठे। मुझे पत्र न लिखना भी मुझे सजा न देने के समान मान कर भी तुम सजा देने का प्रयत्न अपने सुप्त मन से करते रहे। नीता न कभी तुम से बेवफा रही है और न रहेगी ही। परन्तु यदि तुमने उसके भावों का, उसकी असामान्य भावनाओं का सही निराकरण न किया तो फिर शायद नीता तुम्हारे साथ साथ मेरे और गीता के लिए भी सरदर्द बन जाय।

दिवू, तुम जो कह रहे हो वह अक्षरशः सही होगा, किन्तु अब मेरे बस का रोग नहीं है। मैं इस मर्ज को अब ला इलाज समझता हूं। फिर मेरी भी तो भावनाएं हैं। मैं यह महसूस करने लगा हूं कि मैं नीताके द्वारा प्रदत्त जीवन जी रहा हूँ।

सुबी समझ से काम लो, भाई। ऐसा कुछ नहीं है। यह भावनाओं का ज्वार कुछ दिनों का है। जब तक तुम्हें जोड़ने वाला एक और प्राणी न आ जाये तब तक का। फिर सब उफनते दूध का उफान पानी के छींटे पड़ने जैसा शांत हो जायेगा।

दिवाकर और सुबोध ने एक साथ एक लम्बा श्वांस अपने सीनों में भरा फिर शनैः शनैः खाली कर दिया। एक मौन दोनों के मध्य उतर आया था।

दोनों मौन कुछ देर तक बैठे रहे फिर दिवाकर ही लम्बी सांस खींच कर बोला– अच्छा सुबी तुम कुछ नहीं कर सकते तो मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। शायद मैं अपने मिशन में सफल भी हो जाऊं। पर तुम इतना तो आश्वासन मुझे दोगे कि अब भविष्य में अधिकाधिक नॉर्मल बने रहोगे। स्थिति कैसी भी हो, मुझे प्रति सप्ताह सूचित करते रहोगे। अब यह दर्द तुम्हारा अपना ही नहीं मेरा भी हो गया है।

सुबोध निरीह आंखों से उसे देखता रहा कह कुछ न सका। नहीं बोलोगे तो यह भार हल्का कैसे होगा। दिवाकर ने शांत मार्मिक वाणी में कहा।

सुबोध ने एक दीर्घ श्वास लेकर कहा– दिवू मुझे क्या पता था कि तुम भी इस आग में कूद पड़ोगे। बहुत दुःखी हूं, तुम्हें इस परिस्थिति में पहुंचा कर।

दिवाकर ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा– सुबी। बावले हो। मैं दुःखी होऊंगा, तुम्हारा दुःख बटा कर। यह तुमने कैसे कह दिया। मुझे विश्वास दिलाओ सुबी, तुम और अधिक अब अपने को नहीं सताओगे। फिर धीरे धीरे अपने को बदलो। शायद नीता यही चाहती हो और फिर यह सब जीवन का विशेष भला भी तो नहीं करते। इनसे छुटकारा ले सकते हो तो क्या ही सुन्दर हो। परन्तु दिवाकर अपने अन्तिम शब्दों के खोखलेपन से स्वयं ही हिल उठा।

सुबोध ने आँखें उठाकर देखा और जैसे आश्वासन दे रहा हो .. जैसा तुम चाहोगे वैसा ही होगा ।

फिर दोनों साथी चुप हो गए ।

एक अन्तराल के बाद सुबोध उठते हुए बोला— लाओ चाय बना लूं । परन्तु उसने अपनी गलती तुरन्त पकड़ ली बोला— पर तुम तो चाय पीते ही नही ।

दिवाकर ने तुरन्त एक फैसला कर डाला— अरे सुबो बना डालो यार । मैं अब आज से ही अपने को बदल डालू । शायद यही एक इलाज है जिससे मैं नीता को अपनी ओर से, विशिष्ट दिवाकर की ओर से मोड़ सकूं । फिर ऐसे सामान्य जीवन से भी क्या ? जो दूसरो के जीवन मे विष घोल दे ।

सुबोध यह सुनकर प्रस्तर प्रतिमा सा बना खड़ा रह गया । फिर घुटती सी आवाज मे बोला, जैसे कोई उसका गला दबा रहा हो— दिवू तुम क्या कह रहे हो । क्या हमारे लिए तुमने जो अब तक संचित किया है, उसे नष्ट कर दोगे । नही यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ।

सुबो, भावुक बनने से काम न चलेगा । अब मुझे यह स्पष्ट नजर आ रहा है कि इसके अलावा शायद कोई चारा नही है । चलो, उठो बनाओ और यदि तुम नही बनाते हो तो मैं ही बनाकर लाऊं ।

दिवू यह न होगा ।

क्या न होगा ? तुम मुझे यहा ही तो रोक सकते हो । सभी स्थानों पर नही ।

इसे सुनकर सुबोध को लगा कि शायद वह उसे उसके दृढ निश्चय से डिगा न सकेगा । वह कन्धे सिकोड़ कर बैठ गया ।

दिवाकर ने साहस बधाते हुए कहा— सुबो, मित्रता के लिए यदि सिद्धान्तो की हत्या भी हो जाये तो कोई बात नहीं । मैं मित्रता निभाना पसन्द करूंगा । यह बलिदान नही है रे, स्वार्थ सिद्धि है । शायद मैं इस ओढ़ी हुई शालीनता से ऊब रहा होऊं । यह अवसर भर खोजा हो । फिर नीता बड़ी प्रसन्न होगी । उठो मित्र उठो ।

भारी कदमो से सुबोध रसोई घर की ओर चला, साथ में दिवाकर के पैर हल्के उठ रहे थे, जैसे उसने कोई गढ जीत लिया हो ।

चाय पीने के बाद, दोनों मित्र थोड़ा सा मुस्कराये । एक की मुस्कान मे हार का विषाद था तो एक की मुस्कान विजय मे खिल रही थी ।

गीता आ गयी थी।

दिवाकर जाने की तैयारी मे था।

विदा लेते हुए, दोनो के चेहरो पर मृदु विषाद युक्त मुस्कान खेल रही थी। गाडी मे चढ़ते समय भी दिवाकर ने सुबोध को फिर स्मरण दिलाया— सुबो, प्रति सप्ताह पत्र डालते रहना और मैं अपने परिवर्तित रूप मे प्रति माह आता ही रहूंगा।

प्रात: काल दिवाकर गीता को जगाने के लिए द्वार खटखटा रहा था।



दिवाकर चण्डीगढ से जब आया से था। तब से गीता केलिए एक अनबूझ पहेली बनकर रह गया था। वह समझ नही पाती कि उसमे इतने परिवर्तन किस प्रकार हो गए। जब तब वह चाय का आदेश देता रहता है। यही तक नही वह सिगरेट फूकता रहता और फिर घण्टों खांसता रहता है। घर देर से आना अब उसका नित्य का कार्य हो गया है। द्वार पर प्रतीक्षा करना अब गीता ने छोड दिया। जब भी दिवाकर देर से आता तो शराब की गन्ध बिखेरता हुआ आता। गीता पिछले दिनो रातो रोती रहती है। अब तो उसके आसू सूख गए। वह पढ़ी लिखी रमणी है, बी०एड० प्रशिक्षण मे उसने मनोविज्ञान का अध्ययन किया था, परन्तु दिवाकर के परिवर्तन का विश्लेषण किसी भी प्रकार से नही कर पायी, कि इसकी तह मे क्या है? हालांकि उसके समझने मे देर नही लगी थी कि इस परिवर्तन का मूल कही चण्डीगढ मे सुबोध–नीता के यहा है, लेकिन वह है क्या? इसके मूल मे वह अभी नही पहुंची थी। दिवाकर का रुख गीता की ओर गलत हो गया हो ऐसा भी नही था। वह उसी गहराई से उसे प्रेम करता था, परन्तु पहिले की तरह उसके प्यार में गर्मी का अभाव था, जैसे इस गर्मी को किसी सुदूर रहस्यमय भय ने सोख लिया हो। इसके अतिरिक्त उसमें एक और भी परिवर्तन आया था और वह यह कि वह गीता को अधिकाधिक सजाधजा देखना चाहने लगा है और यह जिद जब तक

चलती रहती तब तक उसके अनुरूप वह शृंगार न कर ले। फिर अधमुंदी आखों में वह उसे घण्टों लेटा हुआ देखता रहता, सिगरेट फूंकता रहता।

गीता अन्तर्मन में यह नहीं चाहती थी कि दिवाकर और लोगों की तरह इन व्यसनों का आदी बन जाय, वह यदि कभी कभी कहती थी तब भी वह चुटकी लेने की गरज से ही। अब जब दिवाकर ने इनका मूल कर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था तो इसे भी उसने नियति का लेख मान कर स्वीकार कर लिया था लेकिन वह शराब का क्या करे जिसे उसकी सनातनी संस्कार की आत्मा स्वीकार नहीं करने देती थी।

दिवाकर का घर में देर से आना भी उसे खलता था। वे नए स्थान पर आ गए थे। वह अकेली यहां घुटती रहती थी। कहां जाय किसके पास बैठे। कई बार दिवाकर से उसने कहा भी, रूठ भी गई, परन्तु वह हां हूं के अतिरिक्त कुछ न करता। कभी होश में वायदा भी करता तो एक दिन दो दिन ठीक रहकर फिर भूल जाता।

इस नए स्थान अम्बाला में उसका स्थानान्तरण प्रमोशन के रूप में कई माहों से चर्चा का विषय बना हुआ था। अब तक वह इस स्थान पर इसलिए नहीं आ पाया था कि उसने ही ढिलाई बरती थी। वह यह सोचता था कि दिल्ली से अधिक दूर न जाय। उसकी मां मेरठ में अध्यापिका थी। वह अम्बाला जा कर उनसे और दूर हो जाता। पहले जब उसकी मां चण्डीगढ़ में सेवारत थी, तब वह दिल्ली की ओर कम, अम्बाले की ओर अधिक जाना चाहता था। उसकी मां ने सेवा के अन्तिम दिनों में एक प्रमोशन की खातिर अच्छी-खासी जमी-जमाई नौकरी को छोड़कर मेरठ में अपना अड्डा जमाया था। उन्हें प्रशासनिक पद लेने की उत्कट लालसा थी। जहां वे थी वहां ऐसा सम्भव न था। दूसरे वे इस प्राइवेट कॉलेज की प्रिंसीपल बन कर इसलिए आई थी कि शायद उनके रिटायरमेन्ट के समय में और अधिक वृद्धि हो जाय। पर अब मैनेजमेन्ट को इस पद हेतु एक अन्य महिला कम वेतन पर मिल रही थी। अतः वह इन्हें हटाने की पेशकश कर रहा था। दिवाकर ने अब अम्बाला जाने का निर्णय दो बातों को सोच कर लिया था। पहला यह कि शायद उसकी मां रिटायरमेन्ट के बाद चण्डीगढ़ में ही बसना पसन्द करें दूसरा यह कि वह जब अपनी आदतें बदल रहा है तो नए स्थान पर उसे लोगों की चर्चा का विषय नहीं बनना पड़ेगा, फिर चण्डीगढ़ के वह और नजदीक पहुंच जायेगा।

अस्पताल में अधिक किसी से सुनना न पड़ा। जो दो एक लोग पहले से उसे जानते थे उन्होंने एक दो बार आश्चर्य प्रगट किया, कुछ मुस्कराये भर और समझौता कर लिया गया। यह समझ कर कि इस प्रकार के शौक शौक नहीं अनिवार्यताएं हैं।

लेकिन गीता को इस स्थान पर अपने आपको एडजस्ट करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। एक तो दिवाकर का परिवर्तित होता हुआ रूप और दूसरा कोढ में खाज अनजान पड़ोसियों का साथ।

वह आज भी रसोई में जलती भुनती काम कर रही थी और अपने प्रारब्ध को कोस रही थी कि वह उसके साथ कैसा खिलवाड़ कर रहा है। सोचती थी कि यदि आज दिवाकर जल्दी आ गए तो वह दो टूक उत्तर मांगेगी कि आखिर वह चाहता क्या है ? वह इस प्रकार क्यों बदल रहा है ? वह इसमें अपनी हार समझ रही थी कि उसमें कहीं कोई कमी है जिसके कारण दिवाकर अपने को भूलने का प्रयास कर रहा है लेकिन वह इस निगोड़ी नींद का क्या करे जो उसके आने के समय से पूर्व ही सुला देती है। बीसों आवाजों के बाद वह उठती और अर्द्धनिद्रावस्था में ही दिवाकर की मांगें पूरी करती।

आज और दिनों की अपेक्षा दिवाकर जल्दी आ गया। साईकिल रखते समय वह गुनगुनाता भी जा रहा था।

> दो घूंट पिला दे ऐ साकी,
> पता नहीं इस पल का,
> यह रहे बाकी या न बाकी।

इन दिनों वह पुराने तरीके से नहीं पुकारता था, परन्तु आज वह शायद बेहद खुश था, उसने उसी लहजे में आवाज दी, श्रीमद्भागवतगीता क्या हाजिर हैं ? गीता ने जब यह सुना तो उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ कि ये पहले वाले दिवाकर फिर कहां से जी उठे। वह खुशी से दौड़ती हुई बाहर आई सामान को उसने हाथ से छीन कर एक ओर डाला और उससे लिपट गई, फिर अपने आप शर्म से गड़ गई जैसे नई दुल्हिन ने अपने प्रियतम से आलिंगन बद्ध होते समय किसी और को उसे देखते पाकर देख लिया हो। वह मुस्कराती हुई अन्दर भाग गई।

दिवाकर इस खुशी को देख कर खुश न हो सका। उसके हृदय में एक शूल सा चुभ गया। वह औरों के लिए अपनी खुशियों का गला घोंट रहा है। एक आह उसके सीने में फैलकर होठों की राह बिखर गई। उसके मुख पर फैला हुआ

आह्लाद जैसे बुझ सा गया। वह पीड़ा से तिलमिलाता हुआ अन्दर आया। अब गीता ने उसे फिर बुझा बुझा पाया तो वह समझ न सकी कि अभी अभी जो दिवाकर थे वे कौन थे और अब कौन हैं ?

गीता के चेहरे पर जब दिवाकर ने बुझती मुस्कान देखी तो उसने सम्हलना उचित समझा। वह बोला– अरे खड़ी खड़ी मेरा मुंह क्या देख रही हो ? क्या आज मुझे कुछ पीने को न मिलेगा।

गीता सोते से जागी– ओह क्षमा करिये मुझ से भूल हुई।

'जाओ क्षमा किया' एक नए अन्दाज में दिवाकर ने कहा।

उसके इस कहने के अन्दाज ने जाती जाती गीता को मुड़कर देखने के लिए मजबूर कर दिया। वह सोच रही थी कि आखिर क्या वह कोई फिल्म देख रही है जिसके दृश्य पल–पल बदल रहे हों। उसकी आँखों में उलझा हुआ भय भी था कि कहीं वह फिर उस प्रिय दृश्य को खो न बैठे।

गीता को अपनी ओर देखता पाकर, सम्हलता हुआ दिवाकर एक शरारत पूर्ण मुस्कान के साथ अपनी एक आंख दबा गया।

गीता यह देख कर कि दृश्य बरकरार है एक पुलक से भर उठी।

घर में मानो समय की कैद से छूटी खुशी का आगमन हुआ हो और अब उसका मुक्त हास घर की चाहर दीवारी का कोना छू लेना चाहता हो। वह श्मशान सा घर अब घर लग रहा था।

रात को सोते समय आखिर गीता पूछ ही बैठी– क्या मैं आप से कुछ पूछने की गुस्ताखी करूं ?

दिवाकर को मानों सांप ने सूंघ लिया। उसे भय लगा कि अब वह नीता का रहस्य जानना चाहेगी। वह गीता का मुख टुकुर-टुकुर देखता रहा। कोई उत्तर न दे सका।

गीता उसकी चुप्पी का अर्थ लगाते हुए बोली– क्या आप मुझे नहीं बताना चाहते ?

दिवाकर को मजबूरी में उत्तर देना पड़ा– पूछो वैसे मेरा तुमसे छुपा ही क्या है ?

आपका पहले मुझ से कुछ छुपा हो या नहीं, परन्तु अब तो बहुत कुछ छुपा है या आप छुपा रहे हैं ?

मैं·········?

हां। आप।

शायद ·······

शायद क्या, क्या आप पिछले दिनों में एक अन्य कटी हुई जिन्दगी नही नही जी रहे हैं ?

कटी जिन्दगी। किससे ?

मुझ से।

एक लम्बी श्वास खीचने के बाद वह बोला– नही गीते, तुमसे नही। तुमसे अपने को काट कर तो मैं शायद अपने अस्तित्व से ही हाथ धो बैठूं। यदि मुझ मे कुछ शेष बचा है तो वह तो तुम केवल तुम हो। तुमसे कट कर मैं कहां जी सकूंगा, लेकिन हां शायद मैं अपने आपसे कट कर रह गया हू।

बात तो एक ही है। मुझ से कट रहे है तो, स्वयं से कट रहे है तो, वह जीना तो मुझ से कट कर जीना है।

नही गीता ···· नही। तुम यह कह कर मुझ पर और साथ-साथ अपने पर अत्याचार कर रही हो।

आप पर अत्याचार नही हम भारतीय नारियां दूसरो पर क्या अत्याचार करेंगी। हमें तो अत्याचार का क ख ग भी नही आता। हम अत्याचार करती नही हैं, देखती भर हैं, भोगती भी नही, क्योंकि हम अमरबेलें हैं। हमारे आधार वृक्ष पर होता हुआ अत्याचार ही हमारा अत्याचार है। उसे भी हमें भोगना नही पड़ता वरन् उसे भी हम भोगता हुआ देखती भर है, क्योकि हमारा अस्तित्व तो उस वृक्ष के साथ है, जिसकी हर अनुभूति का हर धड़कन का साथ हमे देना पडता है। भोगे हुए अत्याचार मे भी अपनापन तो होता है, परन्तु अपने वृक्ष पर हो रहे अत्याचार को हम अपना अत्याचार कैसे कहे, जबकि हमारा अपना कुछ भी नही।

·······और एक गहरी पीड़ा गीता की आंखो मे उतर आई। उसने उसके भार को अधिक न सहन कर पाने के कारण अपनी आखें बन्द कर ली और अपना कपोल दिवाकर के कपोल से सटा दिया फिर धीरे-धीरे उसका सर दिवाकर के सीने पर आकर टिक गया।

दिवाकर कुछ न कह सका। उसके मन मे शेर की एक दर्द भरी पंक्ति उतर आई–

गिला दर्द अपने का खामोश रखा

फिर भी क्यो गली गली चर्चा हुई ।

गीता की सुबकियां प्रबल वेग से फूट पड़ी । वह उन्हें अपने में ही समाप्त कर देना चाहती थी । जिसके परिणाम स्वरूप उसका शरीर बुरी तरह हिलने लगा। दिवाकर मौन रहकर बस उसके बालो मे कधी सी करता रहा । उसमें इतना साहस नही था कि वह गीता के चेहरे को देख सके, बस दुख की घड़ियां गिनता रहा ।

कुछ देर बाद जब गीता थोड़ा व्यवस्थित हुई तो उठकर मटके से पानी लेकर अपना मुह धो आई । फिर बड़ी ही निरीह निगाहों से वह दिवाकर को एक टक निहारती रही ।

दिवाकर इन निगाहो को और अधिक न सहन कर सका और दृष्टि झुकाये-झुकाये ही उसने अवरुद्ध कण्ठ से कहा— गीता मुझे क्षमा करना''''''मैं तुम पर बहुत अधिक अत्याचार करता रहा हू ...

गीता ने उसके मुख पर हाथ रख कर कहा मैं और आपको क्षमा, राम ... राम ।

दिवाकर ने हाथ हटाकर कहना जारी रखा — गीता क्या कहूं मैं बड़ा ही मजबूर हू ।

आखिर क्यो ? एक बड़ा सा प्रश्न चिन्ह गीता ने लगा दिया ।

मैं उसे भी बयान नही कर सकता । एक मिशन है, जो मुझे पूरा करना है । उसमे मैं सफल भी हो सकता हू या नही, नही कह सकता । इसमे मैं तुमसे खो भी सकता हूं और नही भी । यह सब कुछ है, किन्तु तुमसे कहा नही जा सकता । उसे मैं अकेला ही भोग सकता हूं, तुम नही ।

क्या आपकी अमरबेल उससे अछूती रहेगी । उसके बिना आप भी तो नही भोग सकते ।

हा लेकिन अमरबेल उसे प्रत्यक्ष नहीं भोग सकती । परोक्षत: तो क्या वह कम भोग रही है ? एक बड़ा सा विराम चिन्ह दिवाकर ने लगाया ।

गीता टुकुर टुकुर उसे देखती रही । फिर आर्द्र कण्ठ से बोली— आप भोग रहे है, इससे मैं बचा नही सकती । सघर्षशील आपका जीवन है, परन्तु आप क्या सघर्ष के लिए घर पर आकर शक्ति का सचय करना मुनासिब नही समझते । भोगते-भोगते नष्ट हो जाने का इरादा भर हो तो फिर मेरा यहा क्या अस्तित्व है ।

कम से कम एक पड़ाव पर तो सुस्ता लेता है यात्री। उसने समझौते के लिए प्रस्ताव किया।

हां तुम ठीक कहती हो गीता— यात्री को किसी एक पड़ाव पर आकर सुस्ता ही लेना चाहिए, परन्तु उसके कदम उसे पड़ाव तक ला ही न सकें तो।

कदमों की ताकत तो अपनी इच्छा-शक्ति की ताकत है। वह ही उसे पड़ाव तक ला सकती है, गीता ने एक गोटी और फेंकी।

शायद वहां तक पहुंचने से पूर्व सब कुछ चुक जायें।

किसी के स्पर्श भर का सहारा भी उसे वहां तक ला सकता है। गीता की एक अन्य चाल।

हां सहारा देने वाले के कदम बहुत मजबूत हो तो हो सकता है।

उसके कदम बहुत मजबूत हैं। वे साथी यात्री के कदमों से ताकत लेकर या उसे ताकत देकर चलना जानते हैं। जैसे गीता ने अपनी समस्त आस्था व आत्म विश्वास प्रगट कर दिया हो।

दिवाकर ने स्नेहार्द्र नयनों से गीता को देखा और धीरे-धीरे उसे अपने प्रगाढ़ालिंगन में बांध लिया।

इस आलिंगन की पवित्र उष्मा ने आलिंगन-बद्धावस्था में ही दोनों को धीरे धीरे स्वप्न लोक में पहुंचा दिया।

६

अब दिवाकर घर पर बड़े ही प्रसन्न मूड में आता था, हालांकि जो उसने निश्चय सुबोध को अपने मे जो कर, नीता के मार्ग से हटने का, किया था, वह दृढ़ था। उसने शराब पीना छोड़ दिया था, किन्तु अभिनय का रिहर्सल अच्छी प्रकार से कर लिया था। चाय सिगरेट भी घर पर कम हो गई थी, किन्तु अब वह उनका सार्वजनिक प्रयोग करके बाहर का रास्ता खोज चुका था। लोग उसे यदि आफर करें

तो वह मना कैसे करे और लोग मांगे तो दे कैसे नहीं। हां बाहर का मुक्त प्रयोग घर आकर बन्द हो गया था। चाय की गीता शौकीन थी ही, इसलिए उसका रास्ता खुल गया, अत: घर पर नित्य उसका मिलना अबाध गति से चल रहा था। विशेष कर सर्दियों में तो गीता दो समय लेती थी, सो अब यह समय दो से चार और चार से छः बार हो गया था।

गीता ने भी समभौते के अनुसार अपने में थोड़ा परिवर्तन किया था। वह अब रात्रि में अपने दिवाकर के लिए शृंगार करती, वह अभिसारिका बनती, किन्तु एक के लिए, और दिवाकर इसे देखकर कुढ़ता कि गीता को उसके लिए इतना बदलने की क्या आवश्यकता है? परन्तु धीरे धीरे इसे भी अपने अभिनय की रिहर्सल भर समझ कर संतोष कर रहा था। कुढ़न अब सात्विक जलन में परिवर्तित हो गयी थी।

दो महीने के लगभग होने आए थे न तो नीता का ही और न सुबोध का ही पत्र उसे मिला था। इससे वह अनुमान लगा रहा था कि या तो स्थिति सामान्य है या फिर एक दम असामान्य। उसने निश्चय कर लिया था कि इस रविवार को वह अवश्य जावेगा। एक दबी दबी इच्छा उसमें नीता को देखने की उभर भी रही थी, जिसे वह अपनी उत्सुकता भर समझ रहा था।

शनिवार को प्रातः ही उसने गीता से कह दिया था कि वह चण्डीगढ़ जाना चाहता है। गीता ने स्वयं भी चलने का प्रस्ताव किया तो दिवाकर ने बड़े मीठे स्वर में उसे समझाया था कि उसका जाना तब तक उचित नहीं जब तक मां स्वयं चण्डीगढ़ न पहुंच जाये। बस चन्द महीनों की ही तो बात है। फिर दुबारा भी उसने जिद पकड़ी तो उसने उलहाने भरे स्वर में कहा अच्छा अब तो सहारे का यात्री भी पड़ाव छोड़कर यात्रा पर निकल पड़ना चाहता है।

गीता इस एक वाक्य से ही स्थिति की गम्भीरता समझ गई। उसने क्षमा याचना करते हुए अपना प्रस्ताव वापस ले लिया, किन्तु बड़े ही कातर नयनों से उसने उसे देखा था। मानों पूछ रही हो फिर तो पहले की तरह चण्डीगढ़ से लौट कर मुझसे खो तो न जाओगे और आंखों में ही दिवाकर ने उत्तर दिया था— क्या सुबह का भूला हर सांझ को फिर भटक जाता है।

शनिवार को दुपहर—बाद की बस से ही दिवाकर चला गया।

ज्यों ही वह बस से उतरा उसने सुबोध को एक व्यक्ति के साथ बिल्कुल नए ही रूप में देखा। पहली दृष्टि में वह उसे पहिचान ही नहीं पाया कि क्या यही सुबोध है? कहां टाइट फिट में सजा सुबोध और कहां ढीला पायजामा, लंबा

कुर्ता और चप्पलों वाला सुबोध। उसे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि यह सुबोध ही है उसने निश्चय करने के लिए उसे आवाज दी– सुबी।

सुबोध ने चौंक कर देखा कि सामने दिवाकर हाथ में सिगरेट लिए अपने पुराने ही वेश में उसके सामने खड़ा है।

दिवाकर अपनी वेशभूषा का मोह न त्याग सका था।

उसके हाथ में सिगरेट देख कर सुबोध इस प्रकार चौंका मानो उसका नंगा पैर कहीं अंगारे पर पड़ गया हो। वह कुछ पल तो बोल ही न सका, पर फिर दिवू कह कर उससे लिपट गया। अपने पहले साथी से उसने शालीनता पूर्वक क्षमा याचना की और दिवाकर का सामान उससे लगभग छीनते हुए ले चला।

सारे रास्ते दोनों मित्र विचारों में डूबे रहे। घर के नजदीक आने पर दिवाकर ने पूछा– सुबी, क्या नीता का खब्त अब भी उस पर सवार है ? क्या हाल है उसका ?

सुबोध ने मृदुल मुस्कान के साथ कहा– चल कर देख लेना, किन्तु तुमने यह क्या खब्तीपन किया है।

कुछ नहीं। दिवाकर ने गम्भीरता को उतारने का प्रयास करते हुए कहा।

वे कोर्टयार्ड में पहुंचे ही थे कि बाहर आता हुआ श्यामा पहिले की ही भांति उसे देख कर अन्दर खबर करने भागा।

बीबीजी देखिए कौन आए हैं ?

नीता उसकी स्नेह युक्त आकुल वाणी सुन कर ही समझ गई कि दिवाकर आया होगा। फिर भी बनावटी लापरवाही से बोली– ड्राइंग रूम में बिठाओ, मैं आती हूं। पता नहीं वे ऐसे समय में कहां चले जाते हैं। उसने अपने को भरसक बेगाना और उपेक्षा–भावयुक्त बनाकर कहने का प्रयास किया था परन्तु दिवाकर के तेज कानों ने और विचार शक्ति ने उसमें निहित बनावट को भांप लिया था। उसने नीता के आने से पूर्व ही सुबोध को वहां से हट जाने का इशारा किया। वह अपने अभिनय की पूरी परीक्षा करना चाहता था, जो धीरे धीरे उसका सच्चा जीवन बनता जा रहा था।

सुबोध चुपचाप बोझिल मुस्कान लिये वहां से हट गया।

नीता जब रसोई से निकल कर आई तब उसकी आंखों में जल भर रहा था। वह शायद प्याज़ काट कर आ रही थी। दिवाकर ने बैंठे बैंठे ही कहा–नमस्ते नीता जी।

नीता ने आँखें साफ करके नमस्ते के लिए हाथ जोड़ने को जो हाथ उठायें तो वे उठे के उठे ही रह गए, परन्तु तत्काल मुस्करा कर बोली— शायद वे जल्दी में इसे यहां छोड़ गए हैं। लाइये मैं फेंक दूं। उसने सिगरेट लेने को हाथ बढ़ाते हुए कहा— परन्तु वे अब काफी कुछ बदलने लगे हैं।

दिवाकर ने इसे बड़े गौर से देखा फिर खिलखिला कर हंसा, रहने दीजिए, इसे सुबो नहीं छोड़ गया है, हम साथ लाए हैं और गहरा कश लेकर उसने उसके मुख की ओर छोड़ दिया।

नीता का आगे बढ़ा हाथ वहीं का वहीं थम गया और अनायास ही उसके मुख से निकला नहीं ' ''' नहीं '' सिगरेट और आप। और फिर उसका मुंह खुला का खुला रह गया, आंखें फटी-फटी हो गईं।

इतने में सुबोध भी आ गया। उसने भी बड़ा सफल अभिनय किया चौंकने का। अरे दिवू तुम, पर यह क्या, सिगरेट और तुम ·····

नीता को जैसे होश आया। वह बड़ी ही खोई हुई आवाज में बोली जैसे यह उसकी अपनी आवाज न हो— यह मैं क्या देख रही हूं। यह स्वप्न है या सत्य? और वह सुबोध के कन्धे से लग कर खड़ी हो गई।

गुरु गम्भीर वाणी में दिवाकर ने जवाब दिया— यह स्वप्न नहीं सत्य है, कटु सत्य, एक ऐसे व्यक्ति का जो 'पर उपदेश कुशल' बहुत था।

नीता अपने आपको और अधिक जब्त न कर सकी, उसने क्रुद्ध सिंहनी की भांति लपक कर जलता सिगरेट दिवाकर के हाथों से छीन लिया और फिर उसे फर्श पर डाल कर चप्पलों से बड़ी बेदर्दी से तब तक मसलती रही जब तक उसका जर्रा जर्रा अलग न हो गया और फिर कण्ठ तक आती हुई रुलाई को जब्त न करने के कारण वह अपने शयन कक्ष में भाग गई।

दोनों मित्र एक दूसरे का मुंह देखते रहे। दिवाकर अपनी सफलता पर मंद मंद मुस्कराता रहा।

रसोई में सब्जी जलने लग गयी थी परन्तु नीता न आई सो न आई। सुबोध ने जाकर स्टोव्ह पर से सब्जी को उतारा। उसका खांसते खांसते बुरा हाल हो गया। स्टोव्ह को बुझा कर वह नीता के कमरे तक गया।

वह तकिए में मुंह छिपाए फफक रही थी। अपने को वह नियंत्रित नहीं कर पा रही थी। दिवाकर ने गर्म लोहे पर ही चोट करने की दृष्टि से कहा—

सुखी रहने दो, अतिथि का स्वागत बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है। किसी के दिल पर चोट करने जैसा मेरा कोई आचरण तो न था, फिर भी मेरा अप ....

उसका अंतिम शब्द अधूरा ही रह गया। नीता रुलाई को भरसक रोकते हुए, हिचकियों के मध्य बोली– अ... प मान हिच् मे... रा हिच कि .. या... अ... आ... प... का है।

दिवाकर ने और अधिक प्रभाव जमाने के लिए सरोष कहा– वाह यह भी खूब रही उल्टा चोर कोतवाल को डांटे।

नीता की हिचकियों और सुबकियों का ज्वार लगभग थम सा गया था। वह बोली– आप ने मेरा .. अपमान नहीं किया तो और किसका किया है। आपको मैं अपना देवता, पथ प्रदर्शक मान कर चल रही थी। मेरा सारा हृदय आपने छलनी कर दिया है।

एक व्यंग भरी हंसी हंस कर दिवाकर बोला– क्या खूब ... क्या खूब मैं और आपका देवता । आपने मेरे मित्र का भी अपमान किया है। दो मित्रों को बांटने का प्रयास किया है।

अब तक अपने पर वह काबू पा चुकी थी, परन्तु उसकी आंखों में अब भी फटी आस्था के टुकड़े तैर रहे थे। वह बोली– मैंने किसी का भी अपमान नहीं किया है। देवता पर प्रेम नहीं किया जाता श्रद्धा की जाती है।

दिवाकर की सारी वाचालता इसे सुनकर काफूर हो गई। उसे व सुबोध को क्या पता कि इन दिनों वह उसे प्रेम के स्थान पर श्रद्धा का पात्र समझने लगी थी, लेकिन नहीं उसे प्रभावित नहीं होना होगा। नहीं तो उसका सारा किया कराया पल भर में नष्ट हो जायेगा। वह और भी अधिक तीखे स्वर में बोला– नीता जी देवता पत्थर के होते है, जो ढोंगियों के ही समाज में आज जीवित है, ये हाडमांस के अनुभूति प्रधान नहीं। हाड मांस का यदि तुम्हारा देवता है तो उसमे केवल प्रेम किया जा सकता है, श्रद्धा नही ।

नीता ने बहुत ही दर्द भरी वाणी में कहा– देवता तो हाड़ मांस के ही होते है। पत्थर का रूप तो प्रतीक मात्र है।

बात बिगड़ जायेगी, यह सुबोध ने भाप लिया था। पिछले दिनों में उसने कितना दुःख भोगा था, इसे वह जानता था और अब फिर वही भोगना नही चाहता था। प्रभाव और गहरा जमें इस हेतु वह बोला– नीतू यदि अब तक अपमान नहीं किया है तो अब कर रही हो। न बैठने को पूछा और न पीने को, लगी रोने,

संयम से काम लो। मुझे भी देखो वह थोड़ी देर रुका जैसे जो कुछ वह कह रहा है वह प्रभावी भी है या नहीं, यह देखने के लिए और बोला– मैं भी तो इसका पुजारी बनता जा रहा था। मुझ पर जो गुजरी है, वह क्या कम है। मेरी तो पिछले माहों की तपस्या ही भंग हो गई।

बात को और अधिक तूल देने के लिए दिवाकर ने एक शह और दी सुबो रहने दो। मैं शायद बेगानों में आगया हूं चलने का उपक्रम करते हुए अपना सूटकेस उठाता है।

जैसे ही दिवाकर ने सूटकेस को हाथ लगाया तो सुबोध ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला– दिवू तुम कुछ भी बन जाओ, परन्तु इतना तो कम से कम न करो कि हमें बेगाना बनाओ।

दिवाकर ने हंस कर कहा– सुबो रहने दो तुम्हारे दिलों को छलनी मैंने किया है, तुम्हारी तपस्याएं मैंने भंग की है, महज एक सिगरेट पीने से। मैंने किसी की हत्या तो नहीं की......।

नीता ने खोई आवाज में कहा– हत्या....... हत्या वह तो तुम कर चुके हो। वह अनायास ही आप से तुम पर उतर आई।

दिवाकर चौंका– मैंने और हत्या ...।

नीता ने उसी विश्वास के साथ कहा– हां तुमने।

घबरा कर बोला– किसकी ?

मेरे देवता दिवाकर की, मेरी आस्था दिवाकर की।

दिवाकर का एकबारगी सर भन्ना गया। नीता को उस पर इतना अधिक विश्वास है, इतनी अधिक श्रद्धा है। यह उसने आज जाना। शायद वह स्वयं भी इतना विश्वास अपने पर नहीं करता, परन्तु उसे खुशी थी कि वह अपने मिशन में सफल हो गया है। वह घृणा के बीज बो चुका है, ऐसी घृणा के बीज जो उसके मित्र के लिए हितकर हैं। वह थोड़ी दबी वाणी में बोला– हो सकता है।

फिर उसने यह दिखाने के लिए कि उस पर उसकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है– एक और सिगरेट सुलगाई।

नीता तड़फ कर उठी और उसने वह भी उससे छीन कर पैरों तले रौंद डाली। फिर बड़ी ही कातर वाणी में बोली–मत पियो दिवू। मत पियो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मत पियो। उसकी आंखों से फिर अश्रुजल बहने लगा।

सुबोध उसकी यह दशा न देख सका और उसने आखें झुकाली। उसे आज पता लगा कि नीता कितनी गहराई से दिवाकर की पूजा करती आ रही है। परन्तु उसके अन्दर सोये साप को इससे शाति न थी। उसका भय-सर्प, दिवाकर के इस प्रभाव को देखकर और अधिक तन बैठा।

दिवाकर ने भी और अधिक प्रहार करना उचित न समझा। वह सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा और फिर बाहर निकल आया, तो देखा श्यामा रो रहा है।

उसे देखकर तो दिवाकर हिल उठा। उसने देखा कि उसकी अपनी आदतों का इन सब पर कितना गहरा प्रभाव था, परन्तु सब कुछ देखते हुए भी उसे पत्थर बने रहना था। श्यामा ने सुबकते हुए एक बहुत बडा सत्य कह डाला– दिवाकर बाबू आप जैसा मित्र ससार मे न होगा।

दिवाकर ने बड़े ही उलझे स्वरों मे पूछा– श्यामा क्या कह रहे हो ? वे लोग मुझे हत्यारा कह रहे है और तुम......

मैं ठीक कह रहा हूं साब, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि आपने किस तरह अपना खून किया है, बीबीजी और बाबूजी के बीच मे से हट जाने के लिए।

श्यामा की तीव्र बुद्धि की मन ही मन सराहना कर उठा।

श्यामा ने आंसू पोंछ कर आगे कहा परन्तु साब, बीबीजी अब तक आपको देवता ही मानती थी। मैंने आखों से देखा है साब . बीबीजी बाबूजी के पैर पकड कर खूब रोती थीं और कहती कि वे अपने को यों न मारे। मैं आपकी हूं विश्वास कीजिए। मुझे आपका वही रूप पसन्द है, परन्तु मैं अपने को सामान्य करने से अब रोक नही सकती हूं, तब बाबूजी भी यही कहते थे– मुझे बनने दो नीतू–, कुछ बनने दो। शराब और जुआ, चाय, सिगरेट और क्लब ही तो जिंदगी नहीं, लेकिन जैसे कहीं बाबूजी झूठ कह रहे हो, ऐसे उनकी जबान लडखड़ा जाती थी। वह शायद आपसे बहुत भयभीत थे। पिछले महीनो की तरह ही फिर इस घर पर मनहूसियत छा गई थी। बाबूजी द्वारा आपको पत्र लिखे जाते, फिर फाड-फाड कर ढेर लगा दिया जाता परन्तु फिर भी मजबूरी मे ही सही आपने इन क्लबो और शराब के दास लोगों को सही रास्ते पर ला दिया। अपना नुकसान करके। क्या यह बड़ी बात नही। साहब हम छोटे लोग तो इसे ही बड़ी बात मानते है।

दिवाकर फिर भीतर चला आया जहा नीता फर्श पर घुटनो में सर दिए बैठी थी।

उसने एक कड़वी मुस्कराहट लाकर सुबोध और नीता की ओर देखा, फिर कहा– सुबो, तुम नीता को सम्हालो मैं तो चला ...

नीता ने रुद्ध कण्ठ से कहा– आप न जायें। मैं अपनी भावुकता के लिए क्षमा प्रार्थी हूं। एक लम्बी सांस खींच कर उसने फिर कहा– मेरा आप पर अधिकार ही क्या था ? परन्तु आपने मुझ में जो ज्योति जला दी है, वह शायद जलती रहे या शायद बुझ जाय, कह नहीं सकती।

दिवाकर ने मन ही मन कहा– बुझ ही जाय तो अच्छा है नहीं तो मेरा एक मित्र मुझ से अवश्य ही छिन जायेगा। वह ठगा सा खड़ा यही सोचता रहा।

नीता ने सूटकेस उठाया और अंदर के कमरे में ले गई। यह उसे रुकने का संकेत था।

भोजन के समय तीनों में बातें नहीं हुई।

इसके बाद दिवाकर ने कहा कि उसे वह कहीं ले चले, वरना उसका यहाँ दम घुट जायेगा, परन्तु नीता ने सुबोध की ओर देखकर बड़ी ही कातर वाणी में कहा– तुम तो चले जाओगे किन्तु मैं।

दिवाकर का प्रस्ताव था कि तुम भी चल सकती हो।

किन्तु नीता ने बड़े ही ठण्डे रूप में कहा– कोई भी न जाय तो ज्यादा अच्छा है।

दिवाकर ही फिर बोला– लेकिन मुझे फिर सिगरेट की या अन्य किसी चीज की जरूरत पड़ी तो फिर वह नाटक दुहराया जायेगा।

नीता ने एक आह भर कर कहा– अब तो सब कुछ लुट गया है नाटक करके अब और क्या आना होगा ?

तीनों चुप रहे।

नीता की आंखों में अचानक एक लपट सी दौड़ गई, जैसे वह कोई भयंकर निश्चय कर रही हो। उसने एक बहुत ही दर्द भरी और बोझिल वाणी में, जिसमें एक करारा व्यंग भी था और साथ-साथ एक ऐसी उत्सुकता भी जैसी कि एक परीक्षक में परीक्षा लेते समय होती है, कहा– मैं सिगरेट लाती हूं आप पीजिए... और यह कहते कहते वह अन्दर सुबोध के कमरे में चली गई। जहां से सुबोध का एक पुराना सिगरेट का टिन उठा लाई। दो सिगरेट सुलगा दी और फिर सुबोध को दे दी और कहा– एक अपने मित्र महोदय को दे दें।

सुबोध सकपका गया। दिवाकर भी इस परिस्थिति से घबरा सा गया, परन्तु उसने चेहरे पर कोई भाव आने न दिया।

नीता ने फिर दृढ शब्दों में कहा– जब संस्थापक ही संस्था की आस्था खण्डित कर दे, तब तुम्ही क्यों अपने से लड़ो। पीजिए, मैं सच कहती हू, इसमे मुझे बेहद खुशी होगी आप पीजिए।

यह उस रोपित घृणा का शायद पहला अंकुर था।

फिर वह और अधिक कटु मुस्कान के साथ व्यंग्य भरी वाणी में बोली– दिवाकर महोदय यदि लाल परी का शौक भी पाल लिया हो तो मैं अपने पति की आज्ञा से साकी भी बन सकती हूं, यह कहते कहते उसने एक सिगरेट सुबोध के मुख से लगा दी। मजबूर सुबोध को एक कश लगाना ही पड़ा।

दिवाकर स्थिति की नाजुकता समझ चुका था। उसका काम उसकी समझ में समाप्त हो गया था। उसने ऐश ट्रे में स्वयं सिगरेट उठाया और धीरे-धीरे कश लगाने लगा।

नीता ने व्यंग्य भरी वाणी में कहा– कहिए तो फिर परी हाजिर करूं।

दिवाकर ने दृढ निश्चय कर लिया– जो कुछ करना है, वह सम्पूर्ण तैयारी के साथ व आस्था से करना होगा। अत: मुस्कराकर, जिसमे चुनौती स्वीकार करने की व व्यंग्य की भावना स्पष्ट थी, कहा– यदि आतिथेय की यही इच्छा है तो मुझे क्या हानि हैं।

सुबोध के मुख से सिगरेट छिटक कर दूर जा पड़ा। वह घबरा कर बोला– क्या ?

दिवाकर ने अपने को नॉर्मल करते हुए कहा– क्यो चौकतें हो ? शौक करूं तो एक ही क्यों ? फिर धीरे से उसने आंख से इशारा कर दिया और फिर दृढ शब्दों में नीता से बोला– लाइये न, देर किस बात की हो रही है।

नीता की सारी आस्था हिल उठी। उसने सकपका कर दिवाकर की ओर देखा। वहां उसने एक व्यंग्य भरी दृढता देखी, जिसमे चुनौती की स्वीकृति साफ झलक रही थी। उसमे पनप रही घृणा ने जोर मारा और एक तीखी मुस्कान सुबोध पर डाल कर, फिर दिवाकर की ओर घूरकर वह चली गई।

लौट कर आई तो उसके हाथो मे सचमुच शराब थी, पेग थे। उसने बिना किसी की ओर देखे और बोले– पेग तैयार करने प्रारम्भ कर दिये, किन्तु सोडा न पाकर उसने दबे कण्ठ से कहा– सोडा तो है नहीं, पानी ही मिक्स कर दूं।

प्रभाव को और अधिक स्थाई जमाने की दृष्टि से, उसने नीता के हाथ से पेग लेने के लिए हाथ बढाते हुए कहा— नीट भी चल सकती है।

तभी दो बूंद आसू नीता की आखो से चुपचाप ढलक कर पेग में गिर पडे मानो वे उसे हल्का करने के लिए अपना बलिदान कर रहे हों। और आते हुए आसुओं को नीता ने ओठ काट कर रोका और मुस्कराने की चेष्टा करने लगी।

दिवाकर ने बेहद प्यासे के समान पेग छीन लिया और एक श्वांस में उसे खाली कर दिया और फिर मुमुर्ष सुबोध पर एक दृष्टि डालकर बोला— लाओ और भरिये।

नीता ने सरोष उसे देखा और फिर एक नया पेग भर दिया।

वह उसे भी एक श्वांस में पी गया।

नीता ने तीसरा पेग भरना प्रारम्भ किया तो सुबोध ने उसे रोकते हुए कहा— नीता बस करो। दिवाकर तुम्हारे पहले के व्यवहार के कारण पागल हो गया है। क्या उसे मार ही डालना चाहती हो ?

दिवाकर बडे ही अंदाज से बोला—
एक जमाना था,
जब साकी और सागर में मुहब्बत थी।
मयखाने मे प्यार था,
मदहोश से दुलार था,
लेकिन अब क्या करूं ?
ऐ ! मेरे खुदगर्ज यार,
जब साकी और सागर के बीच,
मालिके मयखाना आगए है।

नीता ने सुबोध का आगे बढा हाथ झटक दिया और तीसरा जाम भी भर दिया। दिवाकर उसे भी एक विशेष अदा के साथ गटक गया।

सुबोध ने माथा थाम लिया। चौथा— जाम भरा जाना था कि उसका भरपूर तमाचा नीता के गाल पर पडा। बोतल और पेग हाथ से छिटक कर दूर जा पडे और झन्नाटे के साथ टूट कर बिखर गए।

नीता पत्थर की मूर्ति बनी उसे घूरती रही फिर भारी कदमो से अपने शयन कक्ष में चली गई।

सुबोध ने दिवाकर के कंधे पर हाथ रखकर बडी ही संजीदगी से कहा—दिबू मुझे माफ कर देना। मैं ऐसा नालायक मित्र तुम्हें मिला कि मैंने तुम्हारा सब कुछ लूट लिया।

दिवाकर कुछ न बोला उस पर शराब अपना असर दिखा रही थी वह लड़खड़ाता हुआ उठा। सुबोध भी उसके साथ उठा। उसने उसे उसके बिस्तर पर पहुंचा दिया।

सुबह दिवाकर देर से उठा। उसका सारा सर भन्ना रहा था। आखो मे जलन थी। नीता अपना नित्य का कार्य निपटा चुकी थी।

सुबोध आज फिर से सूट मे था। यह नीता की ही जिद थी।

दिवाकर अंधमुंदी आखो से उसे देखकर मुस्कुराया। वह उठा और गुसलघर में चला गया। अंदर से उसने दरवाजा बद किया और फिर अपने को और अधिक स्वस्थ करने के लिए उसने उ गली डाल कर वमन किया।

वमन की आवाज सुनकर नीता भागी भागी आई, परन्तु फिर न जाने किस शक्ति ने उसके आगे बढते कदम थाम लिये। वह न आगे बढ सकी और न पीछे लौट सकी।

पीछे से सुबोध ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कातर वाणी मे बोला—क्या अन्दर दिबू है।

नीता ने बहुत ही संजीदा वाणी मे कहा— शायद ! और वह लौट गई।

दिवाकर जब गुसल करके निकला तो काफी स्वस्थ अनुभव कर रहा था।

सुबोध ने उसे प्रसन्न मुख देख कर सतोष की सास ली।

कपड़े बदल कर उसने सुबोध से कहा— अच्छा सुबी मैं अब चलूंगा।

सुबोध मना करता रहा, किन्तु वह रुका नही।

नीता के रूम से दिवाकर ने अपना सूटकेस उठाया, तब उसने देखा कि उसकी आखों मे घृणा मिश्रित कातरता है जैसे घृणा भी उस पर प्रभाव जमा रही हो, और आस्था भी परन्तु दोनों मे से जम कोई भी न पा रही हो। वह बोली तो कुछ नही, परन्तु उसकी आखें कह रही थीं, क्या यहां इसी सब के लिए आए थे।



आज लगभग एक वर्ष दिवाकर को पूरा हो चला था, किन्तु वह फिर सुबोध के यहा न गया, किन्तु वह नीता को न भुला पाया। गीता में वह पूरी तरह से रमने का प्रयास करता, किन्तु कही जैसे उसके हृदय मे शूल चुभ कर निकल गया हो और उसकी चुभन का मानो अहसास उसे साल रहा हो। नीता के पेग में ढलके आंसू, उसकी आकुलता रह-रह कर उसे वर्ष भर कोंचती रही है। रातों मे भी वह उसे भुला न पाया। वह स्वयं नही समझ पा रहा था कि आखिर क्या बात है जो नीता उसमे गड कर रह गई है उसके व्यक्तित्व मे चिपक कर रह गई है। कभी-कभी वह गीता मे नीता को टटोलता था।

बीच-बीच मे सुबोध स्वय अम्बाला आकर उससे मिलता रहता था। उसी से उसे समाचार मिलता था कि नीता अब नॉर्मल है। वह न बहुत सामान्य है और न बहुत ही फैशन के प्रति असामान्य।

दिवाकर इसे सुन कर खुश तो होता था कि चलो उसके कारण मित्र को सुख मिला, किन्तु बीच बीच में सुबोध पर छा जाने वाले विषाद को वह नोट करने से रह नहीं पाता था। सुबोध का उसे और निगाहों से देखना साल जाता था। जैसे सुबोध उसके लिए कही अपने आप से बहुत बडा संघर्ष कर रहा हो।

उसका सुबोधके प्रति यह सहयोग उसे थोड़ा महंगा पड़ा। चायसिगरेट की लत उसे लग गई थी। शराब तो उस के बाद जैसे उसने फिर कभी छुई ही नही।

इधर यह चर्चाएं भी जोरो पर थी कि उसका स्थानान्तरण चण्डीगढ हो जाय। मा उसकी चण्डीगढ पहुंच ही चुकी थीं। वे वहां रिटायर होकर पहुंची थी। वहां उनका अपना स्थाई प्रभाव सा था। जिससे ऐसा लगता था कि उसका स्थानान्तरण अवश्य ही अम्बाला से चण्डीगढ हो जायेगा। हालांकि इतनी शीघ्रता से उसके विभाग मे स्थानान्तरण नही होते।

उसे इसकी न तो विकल प्रतीक्षा ही थी और न इतनी अनुत्सुकता ही थी कि वह इसका खण्डन करे। पर नीता बड़ी बेकली से इसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

इस बीच में सुबोध का आगमन कम ही हुआ था। दिवाकर किसी अन्य प्रकार की घटना की प्रतीक्षा में था नहीं। वह नीता और सुबोध के बीच से बड़े नाटकीय ढंग से निकल आया था। यही उसकी निश्चिंतता का कारण था। उसके मन में नीता को देखने की हूक अवश्य उठती थी, किन्तु वह नियंत्रण रखे हुए था।

परन्तु एक दिन अनायास ही उसकी निश्चिंतता की दीवार, बालू की दीवार की तरह धसक गई। अचानक ही सुबोध का एक पत्र उसे मिला।

चण्डीगढ़

प्रिय दिवू,

तुमसे अभी पिछले माह में ही मिलकर आया था और अब इस माह में आशा कर रहा था कि तुमसे फिर मिलूंगा, किन्तु यहां बाधाएँ पुनः सर ऊंचा किए बढ़ी चली आ रही हैं।

मैं उनके बारे में क्या लिखूं? मेरा साहस उत्तर दे रहा है। मैंने पहले तुम्हें जिस आग में तपाया था, वह मुझे ही क्या कम तपिश दे रही है, फिर तुम्हारा क्या हाल होगा।

नीता को फिर से वही खब्त सवार हो गया है। वह मानव सेवा संघ की सदस्य बन गई है। तब से तो मानो वह सन्यासिनी हो गई है।

इस सबके चक्कर में उसने अपना स्वास्थ्य भी चौपट कर लिया है। आंखों के चारों तरफ काले घेरे बन गए हैं। बालों का रूखापन पहले फैशन था। अब वह अनिवार्यता हो गया है। पहले लाइट कलर के वस्त्र पहिने जाते थे और अब नितांत श्वेत जैसे वह विधवा हो गई हो। मुझे यह वाक्यांश नहीं लिखना चाहिए, परन्तु हृदय में जब कसक उठती है तो लिखना ही पड़ता है।

मैं स्वयं भी इस फैशन की लम्बी दौड़ से उकता चुका हूं लेकिन कुछ ऐसा स्थायित्व मन पर छा गया है कि ये सब अब अनिवार्य से लगते हैं। शायद मैं अपनी इच्छा पर नियंत्रण नहीं रख पाता या शायद यहां समाज और वातावरण मुझे इससे निकलने की प्रेरणा नहीं देता। लिख नहीं सकता, लेकिन तितली नीता को क्या कहा जाय, वह तो इस तरह रंग पलटती है कि गिरगिट भी उसके आगे मात खा जाये।

शायद नारी मन एक अबूझ पहेली ही है।

मेरे मित्र पहले तुम्हें नीता ने बुलाया था, अब मैं बुला रहा हूं एक दिन के लिए फिर आ जाओ, यहां सुन रहा हूं कि दिवाकर आ रहा है। मां भी आगई हैं।

तुम अवश्य आओगे मैं रविवार की प्रतीक्षा कर रहा हूं। यदि इस बीच कुछ नया हुआ तो पहले ही लिख दूंगा।

तुम्हारी विकल प्रतीक्षा में—

सुबोध

इस बार इस पत्र का प्रभाव नीता के पत्र के समान नहीं था। हां उसे इसकी थोड़ी चिंता अवश्य हो गई थी कि कहीं यह अब नीता के मामले को लेकर बदनाम न हो जाय या फिर कहीं गीता और उसके बीच में दीवार खड़ी न हो जाये। वह चण्डीगढ़ जाना भी चाहता था। मां का पत्र भी आ गया था, लेकिन अब उसका जाना निश्चित सा हो था। सुबोध उसे बुलाए और वह न जाये यह उसके लिए सम्भव न था।

इस दिन भी वह थोड़ा थोड़ा बुझा सा घर पहुंचा तो गीता ने चुटकी ली।

"कहिए गीता के भाष्यकार महोदय गीता का कौन सा श्लोक आपको परेशान कर रहा है?"

दिवाकर ने इस मुलझे हुए व्यंग्य का अर्थ बहुत गहरा लिया और उसका मन शंका के निविड़ अंधकार से भर उठा। वह उसके उत्तर में केवल मुस्करा भर दिया और उसकी यह मुस्कान बड़ी सूनी-सूनी और खोई-खोई थी।

उसके मन में शंका के बीज इसलिए अंकुरित हो जाते थे, कि गीता की यह चुटकियां तब ली जाती थीं, जब वह कपड़े उतार कर हाथ मुंह धोकर लौट कर आता था। वह समझता था कि गीता ने पत्र को जेब से निकाल कर देख लिया है। जब कि गीता यह चुटकी पहले आते ही इसलिए नहीं लेती थी कि-वह शायद थका मादा आया है इसलिए ऐसा है, पर बाद में इसलिए लेती थी कि हाथ मुंह धोने के बाद भी वह सामान्य क्यों नहीं हुआ है।

गीता दिवाकर की मुस्कान का अर्थ अब बड़ी पैनी दृष्टि से लगाती थी और उसने अनुभव किया था कि कहीं, कोई गड़बड़ अवश्य है। इन दिनों उसकी ताड़ने की शक्ति बढ़ भी गई थी। गर्भवती महिलाएं गर्भावस्था के दिनों में पतियों के प्रति बहुत ही भावुक हो जाती है।

रात्रि को जब गीता को अवकाश मिला। तो उसने इसका कारण जानना चाहा। वार्तालाप प्रारम्भ करते समय उसने एक बडी ही मार्मिक चुटकी ली थी— आप तो कहते थे कि नारी मन एक अनबूझ पहेली है, परन्तु यहा तो मुझे इसके विपरीत दिखाई देता है।

दिवाकर इसे सुनकर कटकर रह गया। फिर उसे सुबोध के पत्र की पंक्ति भी याद आ गई। अचानक एक शका-सर्प उसके मन मे तन बैठा, परन्तु फिर उसे अपने पर झुंझलाहट आ गई। वह बोला— गीता आजकल तुमने यह पार्थ की धनुर्विद्या कहां से सीख ली है ? उसकी समझ मे यह उसका उपयुक्त चुभता हुआ प्रत्युत्तर था।

गीता हंसकर बोली मैं तो अनाडी नारी हू धनुर्विद्या का अधिकार तो केवल पार्थ को ही है।

फिर वही .....। दिवाकर इतना ही कह सका।

गीता समझ गई कि दिवाकर इस समय गहन विचारों में व्यस्त है। उससे इस समय कुछ कहना उचित नही। वह शात होकर टुकुर टुकुर देखती रही।

गीता की निरीह चितवन को दिवाकर आखिर कहा तक सहता। वह झिझकते हुए बोला— तुम कुछ और न समझना। मुझे जब भावुकता का ज्वार आता है, तब मैं बहुत हल्की हल्की बातों से भी चिढ़ जाता हू।

और बुझती हुई गीता मे जैसे चेतना लौट आयी। वह तपाक से बोली— और भाटा कब आता है श्रीमान् के विचार-सागर में।

दिवाकर इस उक्ति को सुनकर मुस्करा पडा और बोला— जब गीता के विचार-प्रवाह का ज्वार प्रारम्भ होता है।

गीता भी मुस्करा उठी। दोनो ने मुक्ति भरी मुस्कान से एक दूसरे को देखा और करवट बदल ली।

दूसरे दिन फिर एक पत्र उसकी प्रतीक्षा मे था। यह पत्र तुरंत सुपुर्दगी का होने के कारण उसे पहुंचते ही मेज पर मिला था। पत्र का लेख देखते ही वह पहिचान गया कि पत्र नीता द्वारा लिखा गया है। नीता का पत्र है, इसी भावना मात्र ने उसके अन्तर्मन को झंझोडकर रख दिया। अनजाना भय उसमे व्याप्त हो गया, परंतु आज वह गीता को अपनी उदासी का क्या जबाव दे सकेगा। आज जो कुछ भी उस पर गुजरेगा, उसे वह कैसे छुपायेगा। उसने कम्पन युक्त हाथो से लिफाफा खोला। पत्र नीता का ही था।

चण्डीगढ़

मेरे मानस के मेघ दिवू जी,

सप्रेम वन्दना ।

आपने चण्डीगढ़ से मुख इस प्रकार से मोड़ा कि शायद आप अब चण्डीगढ़ के बारे में भी नही सोचते होगे । कल सायंकाल से कुछ समय पूर्व ही मुझे विदित हुआ कि उन्होने आपको यहां आने के लिए निमन्त्रण दिया है । उनका आमन्त्रण है तब आप अवश्य आये, लेकिन इतना आप भी विचार करते हुए आयें कि मुझे मेरे घर पर मेरा अपमान सहन न होगा । पहले भी आपने मेरी भावनाओं से खिलवाड़ करके, मेरा अपमान किया था ।

वे तो आज भी यही कहते है कि दिवाकर अब पहले जैसा दिवाकर नहीं है । मैं तो अब भी यही समझती हूं कि वे अपने मार्ग पर मुझे लाने के लिए झूंठी बातें कहते हैं । ईश्वर करे उनकी बातें सच न हो ।

आप स्वयं एक बात पर विचार करते हुए आयें कि यदि मैं अपने आप में किसी प्रकार का परिवर्तन करती हूं तो उन्हें चिढ़ क्यो लगती है ? उनसे मैंने आज तक यह नही कहा कि वे क्या करते है । और कहां जाते है ? और इसमें यदि उन्हे हानि होती है तो मुझ से कहें । आपको बार बार मध्यस्थ क्यो बनाया जाता है ? जहां तक मैं समझती हूं उसमे हानि नही होनी चाहिए । हा उन्हें शंका हो कि मैं आपके प्रेम में डूब रही हूं तो जो भी सोचें अच्छा है ।

मैंने तो अब तक यही सुना है कि "तिया चरित्र जाने नहि कोई......।" परन्तु यहाँ तो लगता है कि यह उक्ति उल्टा ही प्रभाव जमा रही है । या फिर यह उक्ति प्रारम्भ में ही गलत रही हो । इसका प्रचार शायद इसलिए इतना बढ़ा कि सत्ताधारी पुरुष ही इसके निर्माता और प्रचारक रहे हैं ।

आप आ रहे है, अवश्य आयें, परन्तु विशाल हृदय और मुक्त विचार धारा लिये । अपने में इतना साहस लिए कि मैं भावनाके सागर में गोते लगाती, एक नारी के पास जा रहा हूं । जो पल में आपसे घृणा और पल में श्रद्धा करने लगती है ।

मैं नही समझती कि आप बदले भी हैं । वे कहते हैं, कहा करें । उसदिन की घटना शायद आपका सबसे बड़ा बलिदान थी । इसी विश्वास पर तो मैं अब तक अपने आपको आपका समझती रही हूं आप आयें अवश्य आयें ।

आपकी

गीता

पत्र को पढ़ने के बाद दिवाकर का सारा अस्तित्व ही हिल उठा। आज वह देख रहा था कि नारी किस तरह आस्थावान होती है। उस पर छाता हुआ भय तिरोहित हो गया था। पत्र बहुत ही संयत भाषा में था। मानों वर्षा मे उफनती नदी अब शांत गम्भीर शरत्काल की नदी बन गई हो।

अंतिम पंक्तियां अवश्य अटपटी थी और यही एक कारण था कि दिवाकर बार-बार डर रहा था। कही नीता उसे अपने प्रेम पाश में तो नही फंसाना चाहती या वह स्वयं तो कही फिसलन भरी राह के दोराहे पर नही आ खड़ा हुआ है।

खैर ... कह कर उसने एक लम्बी श्वांस भरी और पत्र उसने शांत मन मे जेब के हवाले कर दिया।

सांझ पड़े जब वह घर लौट रहा था तो पत्र के बारे में बिल्कुल भूल चुका था। उसने शनिवार को चण्डीगढ़ जाना निश्चित कर लिया था। उसके भय निवारण का एक मुख्य कारण यह भी था कि उसे अब सुबोध के यहां ठहरना नही था। मां के पास ठहर सकता था और शायद सुबोध ने अपने पत्र में इसीलिए मां के समाचार को लिखकर इंगित किया था।

संध्या गीता के साथ बड़ी चुहलबाजी मे कटी। जैसे कुछ भी न हुआ हो।

शुक्रवार की प्रातः फिर एक तुरंत सुपुर्दगी का पत्र उसे मिला। यह पत्र सुबोध की ओर से था। सुबोध का पत्र पाकर इस बार दिवाकर का मन शंका से व्याकुल हो गया। पता नही क्या बात है जो चण्डीगढ़ जाने से पूर्व ही उसे पत्र लिखा गया है।

चण्डीगढ़

प्रिय दिवू,

तुम्हे एक पत्र पहले भी लिखा था और इस रविवार को तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा भी थी, किन्तु परिस्थितियो ने कुछ इस प्रकार से पलटा खाया है कि शायद तुम्हारा यहां आना कलह– अग्नि मे घृताहुति देना हो जाय।

मैं जब स्वयं अपनी आग में जल रहा हूं तब तुम्हे उस आग में जलाने से क्या लाभ। मेरा फैलाया हुआ मुझे ही समेटने दो। जब देखूंगा कि यह मेरी शक्ति से परे होता जा रहा है, तब तुम्हें अवश्य बुलाऊंगा।

आशा है तुम बुरा न मानोगे।

तुम्हारा अभिन्न
सुबोध

सुबोध के पत्र ने दिवाकर को गहरी चिंता में डाल दिया। आखिर क्या घट गया कि सुबोध ने उसका आना भी रोक दिया।

उसने अपनी मेज पर पड़े कागजातों को मन लगाकर पूरा करना चाहा, परन्तु मन में बार बार सुबोध का पत्र सर उठाने लगता। आखिर क्या हुआ वहां? क्या हुआ? यही एक बड़ा प्रश्न चिन्ह उसके सामने नाच उठता।

दुपहर की डाक में एक पत्र और आया। यह पत्र उसकी मां का था बड़े ही उलझे मन से उसने पत्र खोला। जानता था कि सिवाय सामान्य बातों और उसके होने जारहे स्थानान्तरण की चर्चा के उसमें कुछन होगा, परन्तु एकबात खटकने वाली थी कि यह पत्र समयसे पूर्व आया था, फिरभी पत्र तो खोलनाही था।

चण्डीगढ़

प्रिय दिवू,

सदैव प्रसन्न रहो

तुम्हारे पत्र सदैव समय समय पर आते रहे हैं। मेरा यह पत्र तुम्हे मेरे कार्यक्रम से पूर्व ही तुम्हें लिखा जा रहा है। तुम मेरी आदतों से परिचित हो ही। मैं अपने कार्यक्रम को तोड कर पत्र लिखना पसद नही करती बशर्ते कि कोई विशेष बात न हो।

अब भी एक विशेष बात है और उसका सम्बन्ध तुम्हारे मित्र सुबोध की पत्नि से है। . .. दिवाकर ने पत्र पढना बद कर दिया उसका मन शका से भर गया कही मां इस सब हलचल से परिचित तो नही हो गई हैं किन्तु फिर उसने साहस कर पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया...... सुबोध की पत्नि नीता दो दिन पूर्व सीढियों से फिसल गई है। उसे चोट अधिक नही आई है, सिर्फ चद खराशें भर हैं, परन्तु इससे भी भयानक खबर यह है कि उसके चार पांच माह का हमल था और वह फिसलने की वजह से गिर गया है।

बात यहां तक होती तो शायद कोई बात न थी, परन्तु न जाने क्यो सुबोध के मन मे शका घर कर गई है कि नीता जानबूझ कर सीढियो से फिसल गई है।

नीता बार बार मुझसे कह रही है कि तुम आकर सुबोध को समझाओ।

मेरा आदेश तुम्हारे लिए यह है कि तुम अभी मत आना। ताजा घाव और ताजा आग अधिक कष्टकर होते हैं। शायद तुम्हारा यहा आना और अधिक गड़बड़ कर दे।

तुम्हारे बुलाए आने को मैंने बहुत टाला है, किन्तु पता नहीं क्यों नीता तुम्हारे बुलवाए जाने पर जोर दे रही है। इसकी तह मे क्या है ? मैं नही जानती, परन्तु तुम्हारा अभी यहां आना हितकर न होगा।

एक और समाचार है कि तुम्हारा स्थानान्तरण अगले माह के अंत तक अवश्य हो जायेगा।

गीता को आशीर्वाद देना। यदि असुविधा अनुभव न करो तो गीता को कुछ दिन के लिए मेरे पास छोड़ जाओ। वह नीता की देख भाल भी कर लेगी। अपनी सुविधा असुविधा अवश्य देख लेना।

समय पर पत्र अवश्य डालना

तुम्हारी माँ

सूर्यवती

माँ के पत्र ने दिवाकर के सामने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। नीता का साहस यहां तक बढ गया है। अब उसका चण्डीगढ जाना उचित नही। ऐसी स्थिति मे गीता का भेजना भी उचित नही है। पता नही कब नीता खुल जाय।

साझ को उसने घर मे प्रवेश करते ही माँ का पत्र गीता के हाथो मे रख दिया। गीता मा का पत्र देखते ही चौकी, बोली क्या बात है ? यह असमय में ही माँ का पत्र क्यो ?

दिवाकर ने शका-उलझे स्वर में कहा– पढ लो।

गीता शका भरे मन से उसे शीघ्र शीघ्र पढने लगी। एक श्वास में आधा पत्र समाप्त कर वह बोली– आप नीता को प्रारम्भ से लापरवाह बताते रहे हैं। उससे इससे अधिक और क्या आशा की जाती। दिवाकर की ओर देख कर वह बोली– अरे आप इतने सुस्त क्यो है ? यह कहते हुए वह फिर पढने लगी।

सारा पत्र समाप्त करने के बाद बोली– अम्मा जी को भी पता नही क्या क्या वहम सवार हो जाते हैं। अरे आपको न बुलाए तो किसको बुलवाए। उनके आगे पीछे गहरा आत्मीय इतने पास है ही कौन। इतना कह कर उसने पत्र दिवाकर को सौंप दिया, उसका सामान उठाया और अन्दर चली गई।

दिवाकर ने सोचा– ठीक ही तो है, उनका आस-पास आगे पीछे यहां है कौन, यदि उसने इस गाढे समय मे उसे स्मरण कर लिया तो क्या गुनाह कर दिया। वह पुन: ठिठका सा वही खडा रह गया।

गीता ने उसे अंदर आता न देखकर वहीं से ऊंची आवाज में कहा - आप तो ऐसे बुझ गए हैं मानो बहुत बड़ी घटना घटना घट गई हो। कृपया अपना मूड ठीक करें। ऐसी घटनाएं तो नारी के जीवन में घटती ही रहती हैं।

दिवाकर भारी मन और बोझिल कदमों से अंदर आ गया।

दिवाकर विचार कर रहा था कि गीता क्या जानें कि यह घटना कितनी भयंकर है और शायद यह सुबोध और दिवाकर के परिवारों में कितने भयंकर मोड़ लायेगी। उसकी मानसिक शांति को इसी आशंका ने तो छीन लिया है।

इसी तरह डूबते उतराते और गीता के व्यंग्य बाण सुनते दिवाकर को एक सप्ताह और गुजर गया। न तो माँ का ही पत्र आया और न सुबोध का ही। दूसरे सप्ताह के प्रारम्भ में फिर एक पत्र नीता का आया। पत्र क्या था एक प्रकार से नीता में घुसे हुए दर्द की दर्दनाक पुकारें थी।

चण्डीगढ़

मेरे मन के सिमटते हुए मेघ,

सप्रेम वन्दना।

आपको यहां आना था, परन्तु आप यहां न आये। पुरुष स्वार्थी होता है, यह मैं जानती थी, परन्तु यह मैं न जानती थी कि मेरे दिवाकर भी ऐसे होंगे, नितांत कायर।

आप सोचते हैं कि मैं दूर रह कर अच्छा कर रहा हूं। शायद यह आपका बहुत ही गलत विचार है।

वे मुझ पर शंका करके सोचते हैं कि वे अच्छा कर रहे हैं, तो मैं भी कहाँ ठीक कर रहे हैं। मैं आपसे प्रेम नहीं करती, यह एक कठोर सत्य है, परन्तु आप और आपके मित्र का व्यवहार मुझे बार बार उकसाता है कि मैं आपसे अब खुलकर प्रेम करूं श्रद्धा को प्रेम में परिणित करना और प्रेम को घृणा में परिणित करना नारी के लिए बहुत आसान है, शायद पुरुष के लिए न हो।

मेरी अस्वस्थता के समय अपने मन की शंका को व्यक्त कर उन्होंने आपकी तसवीर मेरे मन में और स्थाई बनाने का ही प्रयास किया है न कि धुंधलाने का। वह आपसे कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि मैं जानती हूं कि उन्हें आप पर विश्वास है। अविश्वास का पात्र हूं तो मैं।

मेरी समझ में यह नहीं आता है कि आप पुरुष लोग अभी तक रूढ़ियों में जकड़े हुए क्यों है ? एक ओर ढिंढोरा पीटते हैं कि हमने नारी को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठाया हैं दूसरी ओर उसे शंका के कठघरे मे बांधना चाहते है।

मान लीजिए मुझे आपसे प्रेम ही करना हुआ तो मिस्टर सुबोध इसमें क्या कर लेगें ? रहा प्रश्न आपका कि आप मुझे चाहते हैं या नहीं तो मैं आपसे यह भी कहने नही जाती कि आप मुझे चाहें, प्रेम करें।

प्राचीन समय से ही पुरुष नारी के तन की नैतिकता का मूल्यांकन करता आया है, उसके मन के मूल्यांकन के लिए उसकी न्याय संहिता मे कोई स्थान नही। मैंने अपने तन की नैतिकता को आंच नहीं आने दी है। अब मन का क्या करूं। जो किसी के गुणो पर रीझ गया हो।

माँ को भी पता नहीं क्या हो गया है, वे भी निगाहो से शंका के बाण चलाती है। ठीक भी तो है बुढापे में औरत भी एकाकी रहते रहते कठोर पुरुष जैसी बन जाती है। कई बार मन करता है कि उनसे साफ साफ कह दूं वे बहुत ही सुलझे विचार वाली और विशाल हृदया है। परन्तु मन ने उन्हे भी कही पुरुष मान लिया है, इसलिए उनसे कहने का भी साहस नहीं होता।

आप अब मेरी ओर से कभी आयें। मैं प्रतीक्षा तो कर रही हूं। जानती हूं आप अपने जन्म-स्थान पर अवश्य आयेंगे।

इस विश्वास का एक कारण है, शायद माँ ने आपको लिख दिया हो कि उन्होंने अपने रिटायर होने के बाद मिले धन से आपके लिए एक छोटा सा मकान यही पर खरीद लिया है। अब ऐसी दशा मे आज नही तो कल या रिटायर्ड होने पर तो आप अवश्य आयेंगे।

खैर आप आयें या न आयें आपकी मर्जी।

आपकी

नीता

नीता के पत्र ने इस बार दिवाकर में पनप रही नीता के प्रति सारी अनास्था को एक झटके के साथ तोड़ कर रख दिया था। उसे ऐसा लगने लगा था कि शायद नीता उसे ही अपना सब कुछ मान बैठी है किन्तु समाज के भय के कारण वह इस मुलम्मे युक्त भाषा का प्रयोग कर रही है। स्वयं दिवाकर के मन मे भी कभी-कभी यह विचार उठता कि क्या वह नीता का वरण नही कर सकता, परन्तु फिर

वह इस विचार कुत्सा से भयभीत हो जाता। उसे रुझान के इस बहाव में गीता का स्मरण हो आता और यह स्मरण ही उसे इस कल्पना से बाहर निकाल लाता।

मकान की खरीद की विश्वस्त सूचना ने जहां उसके मन मे एक विश्वास और सतोष के भाव भरे थे वही इसने उसमे चण्डीगढ़ निवास के प्रति भय भी भर दिया था कि कहीं वहां का निवास उसके लिए नए गुल न खिला दे।

आज उसने स्वयं अपनी ओर से एक पत्र लिखा। उसकी स्थिति सुबोध और गीता के लिए अब स्पष्ट ही थी। सुबोध को भी यह पता था कि नीता उसे पत्र लिखती है। सुबोध तो लिख ही रहा है। पत्र मे उसने प्रयास किया था कि इस रोज-रोज की कलह का निपटारा अब हो ही जाना चाहिए।

अम्बाला

प्रिय सुबी और नीता,

सप्रेम वन्दे।

समय समय पर तुम दोनो के पत्र मिलते रहे हैं किन्तु मैंने ही समय पर उनका उत्तर देना उचित न समझा।

अब तुम्हारे पत्रों ने मुझे मजबूर किया है कि मैं तुम्हें पत्र लिखूं। न चाहते हुए भी कि मैं यह सयुक्त पत्र लिखूं, मुझे यह लिखना पड़ रहा है। इससे मुझे कितनी पीड़ा होगी, यह तुम क्या जानों, या हो सकता है तुम इसे मेरा दम्भ मात्र समझो।

नीता का सीढ़ियों से फिसल जाना और फिर उसके फलस्वरूप गर्भपात की स्थिति का आना। सुबोध, मेरी दृष्टि मे कोई अपराध नही है। मैं पहले भी तुमसे एक बार कह चुका हूं कि तुम मुझ पर अविश्वास करते हो। आज पुनः मैं उसी कथन का समर्थन कर रहा हूं।

क्या नीता की फिसलन आकस्मिक नही हो सकती है? दुख है कि तुम कैसे निर्दयी पति और पिता हो जो इतना हो जाने के बाद भी नीता को मानसिक कष्ट दे रहे हो। इससे नीता का भविष्य मां बनने की चाहना से ही घृणा करने लगेगा। या फिर मैं एक बहुत ही कड़वा सत्य लिख दूं। इच्छा तो नही है कि बिला वजह इतना बड़ा दोष मैं मेरे ही मत्थे मढ लूं परन्तु मैं समझता हूं कि यह शंका तुम्हारे अंदर पनप चुकी है, फिर मैं ही उसे अपनी ओर से क्यों न खोल दूं। इसके सिवाय मेरे पास चारा ही क्या है? तुम इसे मुझसे कह सकते नही, घुटोगे अवश्य। हांलांकि इतना बड़ा झूठा इल्जाम तुम मेरे लिए सोचो और मैं चुप रहूं,

परन्तु मित्र, मैं मित्र हूं दुश्मन नहीं। खैर -- .... तुम मेरे चरित्र पर शंका कर रहे हो, करो, परन्तु इतना गलत न सोचो कि हमारी तुम्हारी प्रीति की डोर में ही गांठ पड़ जाय।

लगता है, चलती-फिरती धूप सा तुम्हारा मन कहीं मुझे तोड कर न रख दे। मुझ में यदि अब किसी प्रकार का विकार पैदा होता है तो उसके दोषी तुम दोनो ही होओगे।

नीता, यदि सुबोध से तुम्हें इतनी ही नफरत पैदा हो गई है तो मैं कहूंगा कि ऐसा सामीप्य ही दुःखद होगा। बेहतर है कि तुम दोनों अलग-अलग हो जाओ।

सुबोध ने एक बार तुम्हारे बारे में कहा था– कि पंछी को मैंने पिंजरे में कैद कर लिया है। लगता है वह मीठी कैद तुम्हें बड़ी कठिन लगी या शायद फिर तुम उस मीठी कैद के योग्य नहीं। तुम्हारा स्वतन्त्र मन आज भी उन्मुक्त गगन मे विचरण करने के लिए विकल है। तब फिर किसी और का जीवन दुर्वह करने से बेहतर है कि तुम अलग हो जाओ।

बस अब मैं और अधिक न लिख सकूंगा।

पत्रोत्तर की आशा नही करता। गर्भपात की घटना पर खेद प्रकाश करना, वह भी मेरी ओर से शायद, आप लोगो को दिखावा लगे इसलिए ऐसा भी नही लिखता।

तुम्हारा बिछुड़ा साथी
दिवाकर



दिवाकर ने पत्र डाल तो दिया, लेकिन उसके भीरु मन ने अब अन्दर ही अन्दर छटपटाना प्रारम्भ कर दिया था। उसके सामने कई भय भयावह बन कर उठ खड़े हुए थे। जैसे सबसे पहला भय तो उसे यही कुरेदने लगा कि कही दोनों

यह न समझ बैठें कि वह उन दोनों को हमेशा के लिए अलग करना चाहता है। दूसरा और सबसे डरावना भय यह था कि कहीं सुबोध इस पत्र का अन्य अर्थ लगाकर यह न समझ बैठे कि मैं वास्तव मे नीता को चाहता हूं और उससे उसे छीनने के लिए मेरे षड्यन्त्र की यह पहली किश्त है आदि आदि।

उलझता हुआ मन तब और उलझ जाता है जब कुछ अप्रत्याशित घटनाएं अनायास ही घटित हो जाती हैं।

परेशान दिवाकर की परेशानी उसकी मां के पत्र ने और बढ़ा दी। पत्र क्या था एक प्रकार की एक अबूझ पहली थी। जिसका उत्तर पक्ष-विपक्ष दोनों ओर जाता था। फिर इस प्रकार का पत्र सूर्यवती नहीं लिखती थी परन्तु न जाने किस मानसिक-स्थिति में उन्होंने यह पत्र लिखा था। न जाने वह कौन सा क्षण था जो उस समय उन्होंने जिया था। पत्र पढ़ कर दिवाकर ने जेब मे डाल लिया था, किन्तु वह उसे पुनः पढ़ने से अपने को नहीं रोक पाया था।

चण्डीगढ़

प्रिय दिवू, सदैव प्रसन्न रहो।

कई दिनों की कशमकश के बाद आज मुझे यह पत्र लिखना पड़ रहा है।

तुम्हारा स्थानान्तरण यहां हो गया है। आशा है शीघ्र ही तुम्हें आदेश प्राप्त हो जायेंगे। बड़े प्रयास से ही यह स्थानान्तरण मैं करा पाई हूं। लेकिन अब मैं चाहती हूं कि तुम यहां न आओ तो ही अच्छा है, शायद तुम स्वयं या नीता यहां आने के मूड में न हो, या लगता है कि शायद मैं तुम्हारा आना पसंद नहीं कर रही, फिर सोचती हू कि आखिर यह भागम-भाग मैंने क्यों की थी।

खैर तुम्हारा आना शायद तुम्हारे व मेरे हित मे हो सकता है, परन्तु यदि अहित हो उठा तब क्या होगा? तुम समझदार हो, आना चाहो आ जाना, न आना चाहो न आना। लेकिन तुम्हें आना ही चाहिए, शायद वे लोग अर्थ का अनर्थ लगा लें। फिर मेरी इज्जत का भी प्रश्न है।

खुशी होगी तुम्हें कि अपना मकान हो गया है, परन्तु मैं शायद खुश नहीं हूं।

खैर शेष मिलने पर ही बातें करूंगी। मैं न जाने क्या क्या बेसिर पैर की बातें लिख गई हूं।

तुम्हारी मां
सूर्यवती

सम्बोधन व अंतिम वही पुराना परन्तु शेष पत्र ऐसा जैसे उसकी मां में कहीं नीता पैठ गई है। उसी प्रकार का विरोधाभास लिए लेखन। अपने ही विचारों का स्वयं द्वारा खण्डन। एक ओर दिवाकर को जहा चण्डीगढ़ स्थानान्तरण की खुशी थी वहीं मा द्वारा इंगित बातों से एक अनजाने भय का कोहरा उस पर छाता जा रहा था।

इतने मे ही साहब के केबिन से आवाज पडी। बड़े अनमने मन से वह मेज पर से उठकर अपने अधिकारी के पास गया। बाहर ही चपरासी ने बडे मीठे अंदाज से मुस्करा कर उसका स्वागत किया और द्वार का आधा पल्ला हटा दिया।

दिवाकर का मन तो कही और भटक रहा था। उसे क्या पता कि कौन रोया और कौन मुस्कराया।

अधिकारी के पास पहुंचने तक वह अपने आपे में नही था। उसी समय स्टेनो कृष्णा की खिलखिलाहट ने उसे चौंका दिया और दनदनाती हुई बधाई उसके अधिकारी की उसके कानो मे पडी। बधाई हो दिवाकर,आप चण्डीगढ कब जारहे हैं।

जी... ई... ई और तब कही जाकर दिवाकर अपने आप में फैल रहे भावना जाल से निकला— जी अभी तो कोई विचार नही।

अरे कल तक तो तुम रोज डाक देखते थे आज... . .

सर हुआ कुछ नही, किन्तु आज ही तो नहीं जाया जा सकता।

अच्छा... हँसते हुए मिस्टर खन्ना ने कहा। भाई मैंने आज ही तो तुमको नही भगाना है। मैंने तो तुमसे सिम्पली रूटीन की बात पूछी थी। शायद तुम बुरा मान गए।

नही तो सर... और अपने सर को झटका सा देकर दिवाकर ने कहने के लिए मुंह खोला कि कृष्णा तपाक से बोल उठी।

दिवाकर साहब की तबियत शायद आज खराब है, सर। देखिये न किसी बात का भी जवाब सही नही दे रहे है। भाई दिवाकर गमगीन क्यो हो? क्या भाभीजी से झगड़ा कर आए हो... .. ।

अब तक दिवाकर सम्हल चुका था। वह भारी स्वर में बोला, नहीं यह बात तो नही है, किन्तु हां, मैं भारीपन जरूर अनुभव कर रहा हूं।

खन्ना ने उसे जाने का इशारा करते हुए कहा— तुम चाहो तो मैं आज संध्या तक ही तुम्हें कार्य मुक्त करवा दूं। लंच में तुम्हारा फेयर-वैल हो जायेगा। और सुनो तुम अकेले ही तो नही जारहे हो। कृष्णा भी तो चण्डीगढ़ ही जारही है।

अनायास ही दिवाकर पूछ बैठा– हमारे स्थानों की पूर्ति कौन करेगा।

खन्ना मुस्करा कर बोले– स्टेनो कृष्णा के स्थान पर कोई नए सज्जन आर. के. शर्मा आ रहे हैं और तुम्हारे स्थान पर तुम्हारे पुराने साथी राम हितैषी प्रमोट होकर आ रहे हैं।

जी... ... अब दिवाकर मुस्कुराया।

खन्ना ने अपने खिज़ाब लगे बालों पर प्यार में हाथ फेर कर, निचले ओंठ को थोड़ा तिरछाकर व आखों को नचाकर दिवाकर से कहा– दिवाकर तुम तो गए ही भाई परन्तु मेरे तो ऑफिस की बहा .. ...।

और उनके शब्द मुंह के मुंह में ही रह गए। कृष्णा गुर्राती हुई तनकर खड़ी हो गई फिर जैसे स्प्रिंग टूट गई हो, वैसे ही वह दिवाकर की मुस्कुराती आखें देख कर सहम गई। वह दिवाकर से डरती थी, वरना उसे भय था कि कहीं दिवाकर खन्ना साहब से ही न उलझ पड़े। खन्ना का उमगता मन बुझ सा गया, वह उस मीठी चुटकी को फिर न ले सका। बस बुझे मन से इतना ही पूछ सका– कि क्या वह आज ही कार्य मुक्त होना चाहता है?

दिवाकर ने इन्कार करते हुए कहा– क्या आप मुझे भगाने पर ही तुले हैं। बहार यदि आती है तो खिज़ां को कुछ दिन और रहने दीजिए। यह चुटकी लेता हुआ वह बाहर चला गया। खन्ना साहब की खिस-खिस हंसी और कृष्णा की दबी ज़ुबान, उसका बाहर कुछ दूर तक पीछा करती रही।

बाहर भी सब में यह खबर चपरासी हरसुख ने पूर दी थी। अतः बाहर आते ही प्रत्येक अपनी मेज से उठ उठ कर उसे बधाई देता और फिर मन्दर्भ युक्त मीठी मुस्कान मुस्कुरा देता। कुछ ने तो दबी ज़बान पीठ पीछे कह ही दिया– खुद तो गए ही साथ मे हमारे सनम को भी ले गए।

जैसे ही वह अपनी मेज पर पहुंचा कि हरसुख ने आकर साहब का ऑर्डर सुनाया।

आपकी तबियत ठीक नहीं है। आप घर जाना चाहें तो जा सकते हैं।

चपरासी के जाने के बाद भी वह कुछ देर और बैठा रहा। इसी बीच सभी अपना अपना काम छोड़कर उसकी मेज के इर्द गिर्द इकट्ठा हो गए और बोले– भाई कुछ भी हो दिवाकर, तुमने हाथ मार ही लिया, अपने इच्छित स्थान पर पहुंच रहे हो। केण्टीन में एक बढ़िया सा लंच देकर ही जाओगे। वे लोग उसके पीछे पड़ गए। हार कर इसके लिए दिवाकर को स्वीकृति देनी पड़ी।

उन लोगों के हटते ही उसने घर चलना अच्छा समझा वरना कुछ साथी तो उसे उसी दिन उधेड़ने के मूड मे नजर आ रहे थे।

रास्ते में पत्र की बात पुनः उस पर हावी हो गई। इस बार एक नए ही भय की सृष्टि हुई– कहीं नीता ने उसका सारा कच्चा चिट्ठा तो मां से नहीं खोल दिया, जिस कारण मां ने उसे आने से रोका है। ऐसी दशा मे उसका चण्डीगढ़ पहुंचना दो पाटों के बीच मे पिसने के समान हो जायेगा। इधर मां की झिड़कियां, उधर जब गीता सारा मामला सुनेगी तो वह अलग खाने दौड़ेगी। मित्रों के मध्य जो उठा पटक होगी वह ब्याज मे ही।

घर पर उसका समय से पूर्व आना गीता के लिए अजीब सा लगा। उसने आते ही पूछा– कैसे ? आज इतना शीघ्र कैसे ?

दिवाकर ने होले से बुझी बुझी मुस्कान के साथ कहा– कुछ नहीं थोड़ा सर भारी था और फिर...

फिर क्या ?

मेरा स्थानान्तरण आदेश आ गया है।

इसे सुन कर गीता बावलियों के समान दिवाकर से लिपट गई।

दिवाकर ने सहज भाव से उसे अपने से हटाते हुए झिड़का। बावली हुई हो, बाहर रास्ता है, लोग आ जा रहे हैं और तुम बच्चों के समान मुझसे लिपट पड़ी, छी·।

गलती गीता ने स्वीकार कर ली, फिर वह खुशी खुशी अंदर भाग गई।

बोझिल कदमो से वह घर के अंदर गया। गीता से उसका वह बुझापन छुप न सका। वह अपनी चौकड़ी भूलकर फिर सकपकाती सी उसके पास आई और दिवाकर के सीने पर अपना सर रखकर बोली– आप नाराज तो नहीं हैं न।

नहीं तो। संक्षिप्त सा उत्तर था दिवाकर का।

फिर क्या सर मे अधिक दर्द है।

न......नहीं......है भी, नहीं......भी।

क्या मतलब ? वह छिटक कर दूर खड़ी हो गई।

दिवाकर इस उलझे हुए वक्तव्य को देकर बड़ा पछताया। वह कुछ बोल न सका, बस गीता को ठण्डी निगाहों से घूरता रहा।

मीता ने उलझते से अंदाज में पूछा– क्या फिर आज कोई पत्र आया है ?

दिवाकर मा का पत्र उसे दिखाना नहीं चाहता था। उसने टालने के स्वर में कहा– किसी का भी तो नहीं आया।

मीता ने यह भांप लिया था कि दिवाकर कुछ छिपा रहा है।

वह रूठने के से अंदाज में बोली– आजकल मुझसे बहुत कुछ छुपा जाते हैं। आज मैं आपकी बात नहीं मानूंगी। आपके पास कोई पत्र अवश्य आया है। सुबोध का न सही नीता का सही। आप मुझे दिखायें।

नीता के नाम से ही दिवाकर भकभका गया। वह भय को दबाते हुए बोला– नहीं भाई, मानो मीता। यह पत्र नीता का भी नहीं है।

फिर किसका है, आप बताते क्यों नहीं ? नीता का नहीं है तो फिर और किसी का पत्र छुपाने का तो अर्थ ही नहीं होता ?

दिवाकर को जैसे किसी ने गर्म लोहा छुआ दिया हो। वह तड़प कर बोला– क्या मतलब तुम्हारा ?

मतलब, बमतब कुछ नहीं, आप आज कल बहुत कुछ छुपाते से रहे हैं, हो सकता है कि आप नीता का पत्र आने पर मुझसे छुपा जाते हों।

इसके मतलब यह हुए कि मेरे सम्बन्ध नीता से कुछ और हैं ?

उसी तेजी से मीता बोली– यह दोष तो मैं आप पर नहीं लगाती। पता नहीं आप तीनों में क्या हांडी खुदबुदा रही है ? मुझे क्या पता ? न मुझे सुबोध के पत्र देखने को मिलते हैं न नीता के। बस सूचना मिलती है कि पत्र आया है, जा रहा हूं।

मैं तो तुम्हारे ही हित में, उन लोगों के पत्र तुम्हें नहीं दिखाता हूं। उनके मध्य लगी हुई आग में तुम क्यों जलो ?

ठीक है, यह भी मेरे हित में है कि मैं आपके पास आए हुए पत्रों को न देखूं। यह भी मेरे हित में है कि आप दुनियां भर के ऐबों से दूर रह कर फिर ऐब करने लगें। आप यूं मुझे रह कर अपना स्वास्थ्य चौपट कर रहे हैं, यह भी मेरे हित में है। मैं चौबीस घंटे घर की चाहर दीवारी में कैद रहूं आप बाहर घूमते रहें यह भी मेरे हित में ही होगा। सारे सुख-दुख का भार जैसे आपने ही उठा लिया है। आप जिसे सुख देना समझते हैं, मैं उस सुख भोग से तौबा करती हूं। मैं पत्नि कहां ...... दा......

उसके मुंह से पूरा वाक्य भी न निकल पाया था कि एक झन्नाटेदार तमाचा उसके गाल पर दिवाकर ने जड़ दिया।

गीता जैसे प्रस्तर प्रतिमा बन गई हो। उसकी पलकें स्थिर हो गईं वह जलती हुई स्थिर आंखों से कुछ क्षण उसे देखती रही, फिर वह एक झपाटे के साथ अपनी खाट पर आकर औंधें मुंह पड़ रही और फफक फफक कर रोने लगी।

दिवाकर भी अपने इस कृत्य पर मुमुर्षे सा खड़ा रह गया। उसने जो कुछ किया वह इतनी त्वरा के साथ किया था कि वह अपने कृत्य का औचित्य अनौचित्य न समझ सका। गीता के पत्र के आरोप ने ही उसे इस कदर उत्तेजित कर दिया था कि वह अपना आपा खो बैठा। उसे लगा कि गीता सब कुछ जान गई है। फिर उसने सोचा, यदि जान ही गई थी तो उसके व्यवहार में अंतर तो आया नहीं था, फिर वह इतना उत्तेजित क्यों हुआ? अब वह पछता रहा था। जो कुछ हुआ था वह उसके दाम्पत्य जीवन में पहली बार और बहुत ही अप्रत्याशित था।

अब वह चाह रहा था कि अपनी इस क्षणिक भावुकता के लिए क्षमा मांग ले, किन्तु उसके अंदर बैठा हुआ संस्कारी पुरुष उसे ऐसा करने से रोक रहा था और जीता हुआ सभ्य मानव उसे बार-बार गीता को मनाने के लिए उत्साहित करता था। रूढ़िवादी पुरातन पुरुष कहता–क्या उसकी बदजुबानी सहनीय थी, उसके लिए जो कुछ किया है वह क्या उसके अहित में था?

इसी ऊहापोह में कुछ क्षण और गुजर गए और फिर झिझकता हुआ सा वह गीता के सिरहाने आ खड़ा हुआ। उसकी झिझक ने उसे कुछ क्षणों के लिए थाम लिया। वह उलझता सा फिर आगे बढ़ा और उसने गीता की खाट की पाटी पर एक हाथ टिकाकर गीता का एक हाथ थामना चाहा तो गीता ने उसका हाथ झटक दिया, वह अभी तैश में थी।

दिवाकर सहमा सा कुछ देर निर्दोष आंखों से गीता को ताकता रहा। उसने फिर दृढ़ता से गीता को उल्टे से सीधा कर दिया। गीता बिफरी सिंहनी सी करवट बदल गई।

दिवाकर को इस समय उसे छेड़ना उचित न लगा। वह उठकर चला आया। फिर कुछ सोच कर रसोई में घुस गया और बिना किसी पूर्व विचार के उसने स्टोव्ह को सुलगा दिया। फिर भगोनी में पानी रख दिया।

गीता ने भी अब भावना-ज्वार से निकल कर सोचना प्रारम्भ कर दिया था। क्या उसका इस प्रकार अनर्गल प्रलाप उचित था। कोई हारा थका ऑफिस

से आए, तो क्या उसे इस प्रकार जली-कटी सुनानी चाहिए, लेकिन उसका स्त्री सुलभ हठ उसे समर्पण करने के लिए नहीं कहता था। वह पिछले दिनों से जो भोग रही थी, उसका गुबार अब इतना अधिक एकत्रित हो गया था कि वह बस ऐसे ही किसी अवसर की खोज में था, कि फट पड़े।

इतने में ही उसके कानों में रसोई से आती हुई स्टोव्ह की भर्र भर्र की आवाज पड़ी। एक बार तो तड़प कर वह उठ बैठी, पर फिर उसके आत्माभिमान ने उसे धिक्कारा कि वही पहल क्यों करे, परन्तु उसके रूढ़िवादी मन ने इसे नहीं स्वीकारा। फिर उसके मन ने ही तर्क किया कि पहल तो उन्होंने ही की है, यह आखिरी विचार आते ही वह तेजी से रसोई घर की ओर भागी।

भागते कदमों की आहट रसोई से बाहर आते दिवाकर के कानों में भी पड़ी। वह बरबस ही अपनी कर्तव्यपरायणा पत्नि के प्रति सहानुभूति से भर उठा।

ज्यों ही गीता पास आई तो उसने उसे अंक में भर लिया और फिर एक गहरा चुम्बन जो उसके कपोलों पर अंकित किया तो उसे आंसुओं का खार जुबान पर तैरता हुआ अनुभव हुआ। अचानक ही उसने थूक दिया।

गीता की मृदु खिलखिलाहट बोझिल वातावरण में खिल उठी। दिवाकर भी हंसे बिना न रह सका।

तनाव एक अनोखी आवाज करता हुआ टूट कर बिखर गया।

दिवाकर एक मर्मभेदी मुस्कान छोड़कर अपने ऑफिस के कपड़े उतारने चला गया।

चाय अभी बन कर तैयार भी नहीं हुई थी कि गैलरी में घंटी टनटना उठी। दिवाकर ने वस्त्र बदल लिए थे, बस वह चाय लेने की तैयारी ही कर रहा था।

झुंझलाता सा वह द्वार पर पहुंचा। द्वार पर पहुंचने के बाद उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने अपने सामने कृष्णा को खड़े पाया। वह आश्चर्य में इतना डूबा कि वह कृष्णा से न तो अंदर आने के लिए कह सका और न कृष्णा के अभिवादन के लिए जुड़े हाथों का ही उत्तर दे सका।

कृष्णा ने ही इस जड़ता को भंग किया, बोली— क्या घर आए अतिथि का इसी प्रकार सम्मान होता है श्रीमान् के यहां .. ....

ओह क्षमा करें। तंद्रा से जागते हुए दिवाकर बोला— आइये... आइये और वह एक ओर हट गया।

कृष्णा शायद ही किसी कर्मचारी के घर जाया करती थी। कम से कम दिवाकर के यहां तो नहीं ही, इसलिए दिवाकर के यहां उसका आगमन आश्चर्य नहीं होता तो क्या होता ?

घर में घुसते ही कृष्णा का पहला प्रश्न था— क्या गीताजी को पहले ही रवाना कर दिया है ?

लेकिन उसे अपनी कही बात का तुरन्त उत्तर मिल गया, गीता की शर्म से लजाती हुई नमस्ते से।

गीता ने प्रश्नवाचक दृष्टि से दिवाकर को देखा— जैसे पूछ रही हो, क्या यह भी कोई छुपाने वाला पत्र है ?

दिवाकर ने गीता का भाव समझते हुए कहा— गीता, इनसे मिलो यह अपने ऑफिस में बड़े साहब की स्टेनो हैं, कुमारी कृष्णा चावला।

गीता कृष्णा को अंदर के कमरे में ले गई।

वहां चाय पर ही बात प्रारम्भ हुई। कृष्णा निष्प्रयोजन नहीं आई थी, वह बोली— दिवाकर महाशय आप तो स्थानान्तरण में चण्डीगढ़ जा रहे हैं और शायद जानते ही है कि मैं किस प्रकार से चण्डीगढ़ आ रही हूं।

अनजान बनते हुए दिवाकर ने एक घूंट चाय सुड़कते हुए कहा— नहीं तो मैं नहीं जानता।

जनाब मैं वहां सहायक सचिव बनकर आ रही हूं। मुझे आर्थिक लाभभी है।

तो मुबारक हो। दिवाकर मुस्कराया।

सूखा मुबारकबाद। कृष्णा चहकी।

जी नहीं...... चाय के साथ में..... दिवाकर ने हंसती आंखों से कहा और सब हंस पड़े।

फिर गम्भीर होकर कृष्णा बोली— मैं हुजूर से मुबारकबाद लेने नहीं आई हूं। कुछ और भी कार्य है।

वह क्या ? दिवाकर ने भोलेपन के साथ कहा।

वह यह है कि आप फटाफट कार्य मुक्त हो जायें।

मेरे कार्यमुक्त होने से आपके कार्यमुक्त होने में क्या अड़चन पड़ रही है।

पड़ रही है। जोर देकर कृष्णा बोली।

कैसे ?

यही कि आपको एक दिन स्टाफ लंच देगा, फिर एक दिन आपसे लेगा, तब कही जाकर आप कार्यमुक्त होंगे। इस प्रकार ये तीन दिन तो कम से कम लगने ही है। फिर आपसे यह भी प्रार्थना करने की तैयारी है कि आप कुछ दिन और रुकें जिससे आपके स्थान पर आने वाले राम निर्मयी आ जायें।

मैं तो कृष्णा जी अब भी इसमें कोई अड़चन नहीं समझता हूं।

अजी आप क्यों समझेंगे ? अपने प्रमोशन पर तो उसी दिन भाग आए थे न। आपको पता होना चाहिए कि साहब ने मुझे भी आपके साथ ही कार्यमुक्त होने के लिए आदेश दिया है अब आप समझे।

ओह आप सीनियरिटी और जूनियरिटी के चक्कर में।

वाह ! क्या आपने भी यही नहीं किया था जो मैं करना चाह रही हूं।

ओह ... । और कोई बात कहता दिवाकर रुक गया फिर वह बात चबाकर बोला– और यदि मैं जाना ही नहीं चाहूं तो, क्या आपको भी रोका जायेगा।

वाह आप यह क्या कह रहे हैं ? बड़े प्रयत्नों से आपकी माताजी ने आपका स्थानान्तरण कराया है और आप हैं कि जायेंगे ही नही।

शायद नही भी। वह गम्भीर हो गया।

गीता इसको सुनकर चौंकी, परन्तु बोली कुछ नही। यह उसकी आदत थी कि वह अपने पति और किसी से बात हो रही हो रही हो तो बीच मे बोलना पसंद नही करती थी।

कृष्णा ने एक मर्मभेदी निगाह से गीता की ओर देखा और कहा– क्या गीता जी चण्डीगढ नही जाना चाहती है।

अब गीता शांत न रह सकी। क्योंकि यह आक्षेप उसी पर सीधा आ रहा था। वह बोली– आप शायद भूल कर रही है, मैं तो तुरंत चल देना चाहती हूं।

फिर...... कृष्णा उलझती सी बोली।

कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं, जो स्पष्ट नहीं किए जा सकते। दिवाकर ने फैसला सा कर दिया।

कृष्णा चुप हो गई उसके पास अब आगे कहने के लिए कुछ भी नही था।

एक बोझिल सी चुप्पी तीनो के मध्य उतर आई थी।

इस चुप्पी को भी दिवाकर ने तोड़ा, बोला वैसे मैं आऊंगा ही, कुछ

कारण यदि बन गए जिनके कारण मैं न जा सका तो बात और है। यदि गया तो शीघ्र ही जाऊंगा। यह मेरी ओर से आश्वासन है। तुम्हारा अहित नहीं होगा।

फिर कृष्णा इधर-उधर की बातें कुछ देर तक करती रही और आधा घंटे उपरान्त उठ कर चली गई।

सांझ तक तनाव का सा ही वातावरण बना रहा। गीता फूली-फूली घूमती रही। एक बोझ सा दिवाकर भी अनुभव करता रहा। दोनों ने एक दूसरे से बातचीत नहीं की।

रात को सोते समय गीता ने मुंह खोला। आप चण्डीगढ़ क्यों नहीं जाना चाहते हैं?

दिवाकर मूक रह कर केवल गीता को देखता भर रहा।

गीता ने फिर प्रश्नभरी निगाहों से दिवाकर को घूरा, परन्तु दिवाकर केवल निगाहें चुराता रहा।

एक तनाव बिखर उठा।

फिर गीता ने ही दूसरा प्रश्न दुहराया— आपने उस पत्र के बारे में भी अभी तक नहीं बताया, आखिर यह तनाव युक्त, रहस्य मय जीवन हम कब तक जीते रहेंगे।

दिवाकर मथते हृदय का तूफान लिए फर्श को अपलक घूरता रहा, उसमें बोलने का भी साहस नहीं रहा। वह क्या उत्तर दे? इस समय वह ऐसे चौराहे पर खड़ा था— जिसके एक मार्ग पर गीता थी, दूसरे पर नीता तो तीसरे पर सुबोध और चौथे पर मां आकर खड़ी हो गई थी। किसका पक्ष ले, किसका न्याय करे फिर वह स्वयं एक उलझी गुत्थी बन कर रह गया था, उसकी वाणी इसी हृदय में मचल रहे तूफान में कहीं खो गई थी।

हारकर अंतिम रूप से, सजल नयन लिए, कातर वाणी में गीता ने फिर कहा— क्या आप मुझे इतना ही अबोध समझते हैं कि आपको जिस बात ने इतना परिवर्तित किया है, उसे मैं सहज ही लोगों की चर्चा का विषय बना दूंगी।

मूक विचार ने अपना मौन आसन बदल कर तोड़ा—गीता, मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह सब तुम्हारे भले के लिए कर रहा हूं। ठीक है कि मेरा स्वास्थ्य व चरित्र भी गिर रहा है, लेकिन क्या करूं। परिस्थितियां ही ऐसी आ गई हैं,जिनके कारण मुझे यह सब करना पड़ रहा है और यह सब कुछ तुम्हें सहना पड़ रहा है।

गीता ने बात को बीच में काटते हुए कहा– आप जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे हैं किन्तु क्या वास्तव मे जो कुछ हो रहा है, वह इस योग्य नही कि उसे मुझे बताया जा सके। खैर ठीक है, न बताइये परन्तु चण्डीगढ़ न जाने का कारण तो बताइये। आखिर मा का परिश्रम क्या यूही निष्फल जायेगा।

थोडा आवेश मे आकर दिवाकर ने कहा– क्या मा... मा... की रट लगा रखी है। मा ही तो... और वह एक दम चुप हो गया मानो उसकी वाणी की पतंग हर्म्य पर से कट गई हो।

गीता तपाक से बोली– आप फिर बात दबा गए। आप आखिर साफ साफ क्यों नहीं कहते हैं? क्या मा ने कुछ लिखा है? यदि मा ने कुछ लिखा है तो फिर आप अब तक छुपा क्यो रहे है?

दिवाकर ने अत मे निर्णय कर लिया। वह बोला– क्या साहस है तुममें, अपने पर लगाए गए आरोपो का सामना करने का?

गीता मे नारी सुलभ उत्सुकता जाग उठी। वह तडप कर बोली– आपने मुझे अभी समझा नहीं, यह मेरे भाग्य की कितनी बडी विडम्बना है। कृपया पत्र दिखाएं और फिर देखिए कि मुझ मे साहस की कितनी गहराई है।

दिवाकर को पत्र देना ही पडा।

पढकर गीता कुछ देर तक गुमसुम बनी रही।–जैसे किसी ने गीता को मत्र से शापित कर मूक कर दिया हो, फिर एक लम्बा हुंकारा भर कर वह बोली– बस इसी के लिए परेशान थे। यह तो वृद्धा होती सास का सामान्य सा परिवर्तित होता मनोपरिवेश है।

दिवाकर मुह बायें गीता को ताकता रहा। उसे इस बात का कभी भरोसा न था कि गीता अपने आप पर लगाए गए अकारण दोष को यू सामान्य समझ कर नकार जायेगी। अब उसे लग रहा था कि इतना जलने भुनने से बेहतर था कि प्रारम्भ मे ही सभी पत्रों को उसे दिखा देता परन्तु तुरन्त ही उसे अपनी भूल का भान भी हो गया।'

गीता एक लम्बे निःश्वास के बाद बोली– आधा पत्र तो ठीक है परन्तु शेष भाग की भाषा समझ मे नहीं आती। माँ तो कभी ऐसे पत्र लिखती नहीं थी। कहीं यह हमारे परिवारो के मध्य किसी अन्य नारी या पुरुष का षडयन्त्र तो नहीं और फिर एक बार पत्र को पुन. देखा तथा उसकी सी एक हुंकारी भरी तथा फिर कहा यह लेख और हस्ताक्षर तो मां जी का ही है।

कुछ समय तक एक अखरने वाली चुप्पी छाई रही।

अंत में गीता की खिलखिलाहट से मौन टूटा, सुनो मुझ पर यह आरोप तो इसलिए लगाया गया है कि आपने इस बार मा जी के कई पत्रों का उत्तर नही दिया है। हर मां अपने पुत्र को तो अच्छा समझती है, परन्तु पुत्र वधू पर शका करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है और यह है भी स्वाभाविक। रहा प्रश्न पत्र के अगले लेखो का तो बहुत सी बातो का उत्तर तो सरल है। शायद पड़ोस अच्छा न मिला हो, आपका अफसर ठीक न हो, या शायद उन्हे कृष्णा पर ही सन्देह हो, जिसका प्रमोशन आपके स्थानान्तरण के साथ साथ ही हुआ है। मां जी आखिर में एक अनुभवी महिला है। उनका इस प्रकार की शका करना व्यर्थ ही नही है। शेष कुछ होगा। हमे व्यर्थ की चिंताओ को अपने सरो पर क्यो ढोना चाहिए।

दिवाकर ने निवृति की एक श्वास ली और गीता के भोलेपन पर मुस्कुरा कर रह गया।

तनाव का बादल छिन्न भिन्न होकर छितरा गया था और निवृति की मंद बयार बह उठी थी।



चण्डीगढ में आए हुए गीता को दो महीने से ऊपर हो गए थे। कोई विशेष घटना नही घटी थी। न तो मां ने ही गीता को कुछ बताया था और न गीता ही कुछ जान सकी थी। नीता ने भी अपनी भावुकता का परिचय नही दिया था। वरना प्रारम्भ के कुछ दिनों मे दिवाकर भय से विजड़ित रहा था। मां का भी उसे सख्त आदेश था कि वह सुबोध तथा नीता के मध्य हो रहे मतभेद मे न पड़े, अपने काम से काम रखे, फिर भी दिवाकर छिपे रूप से सुबोध से कई बार मिल चुका था। सुबोध ने भी स्वयं उससे मिलना जारी रखा था। नीता ने एक दो प्रयास उससे मिलने के किए थे, परन्तु वह उनमे मां की सतर्कता और

डर के मारे सफल न हो सकी थी। घर पर या ऑफिस मे वह मिलना नही चाहती थी। इधर गीता की जिद चल रही थी कि वह नीता से मिलना चाहती है, परन्तु न तो नीता ही गीता से मिलने की इच्छुक थी और नही मा की ही ऐसी आज्ञा थी। उसे भय था कि कहीं भावुकता में आकर नीता सारा वह न उगल जाय, जिसे वह अब तक बडी कीमत देकर अपने हृदय मे दफन किए चला आ रहा है। मा की दूरदर्शी निगाहो ने नीता का रुझान उसकी ओर नोट किया था और उसी के फलस्वरूप वह पत्र लिखा गया था।

इस प्रकार दिवाकर बडी ही शांति से अपने जीवन को चलाने लग गया था।

सुबोध और नीता के मध्य मे क्या कुछ घट रहा है, उसका उसे विशेष पता नही था हालांकि सुबोध मिलता रहता था, परन्तु सुबोध का मिलना भी अब औपचारिक ही होता था। वह अपने ऊपर अब हमेशा एक रहस्य की चादर सी ओढे रहता था। कही न कही इस शांति के पीछे कोई तूफान मचल रह था किन्तु दिवाकर उससे अनभिज्ञ था। सुबोध भी बचना चाह कर मिलता था और इसी प्रकार दिवाकर भी।

लेकिन एक रोज अनहोनी घटना घट कर ही रही। मां की आज्ञा से और गीता की सेहत की तरफ एव रुचि को ध्यान मे रखते हुए, वह इस रविवार को गीता के साथ पंजोर के मुगल उद्यानो मे सैर करने के लिए चला गया। वहीं पर एकाकी नीता से मुलाकात हो गई। नीता ने हालांकि बडे ही सयत स्वर मे ही वार्तालाप किया था किन्तु बात को तो गीता के सामने खुलना ही था, सो किसी अन्य रूप मे वह गीता पर इशारे के रूप मे खुल गई। वार्त्तालाप कुछ हल्के-फुल्के रूप मे इस प्रकार प्रारम्भ हुआ।

अरे दिवाकर साहब तो आजकल दूज के चाद हो गए हैं।

ओह नीताजी आप, दिवाकर का सकपकाया स्वर अत मे और लड़खडा गया।

वाह गीता जी भी हैं ! नमस्ते।

नमस्ते। गीता का नम्र किन्तु संक्षिप्त उत्तर था, अपने मे सिकुडा सिमटासा।

फिर एक प्रस्ताव किसी शात स्थान पर टिक बैठने का, जिसका अनुमोदन गीता द्वारा तपाक से हुआ और दिवाकर द्वारा बोझिलता से।

आग्रकुंजो के एकान्त मे नीता पुराने सम्बोधन पर उतर आई जिससे गीता को बड़ा अटपटा सा लगा। वह अपने पति की कसमसाहट को भांपती है, नीता की त्वरा युक्त वाणी और फिसलती चितवन को आंकती है, और आंकती है

उसके रूप आमंत्रण को जिसमें छुपी छुपी वेकल सैक्स– अपील है। वह समझने का प्रयास करती है कि सुबोध में और नीता में कैसी पट रही है।

इस बीच शिकवे और शिकायतें प्रारम्भ होती हैं।

दिवू, तुम्हें चण्डीगढ़ आए बहुत दिन हो गए किन्तु घर पर नहीं आए, क्या मुझसे नाराजी है?

इसको कहते समय गीता ने नोट किया कि नीता की सामान्य वेशभूषा में भी नीता के अंग अपना पूरा प्रदर्शन कर रहे थे। उसने नीता को प्रारम्भ से ही अच्छा नहीं समझा था। उसका यही रूप उसे पसंद न आया था। समयानुकूल फैशन को वह बुरा नहीं मानती थी। इधर उसने दिवाकर की हरकतों को भी नोट किया था कि वह दबी छुपी भूखी निगाहों से नीता को देख लेता है, लेकिन वह चुप थी।

दिवाकर ने बहुत ही संयत और संस्कारित भाषा में उत्तर दिया समय न मिल सका नीता जी।

अब क्यों आने लगे, अब वे स्वयं हो पहुंच जाते हों तो।

नहीं, यह सब तो नहीं है।

वही सब है, वही हांडी अब भी पकती है। फर्क है तो बस इतना ही कि अब हांडी रसोई के द्वार बन्द करके पकाई जाती है।

दिवाकर बोला— क्या फिर तुम पर वही भूत सवार हो गया है।

वह भूत तो अब देवता का वरदान है, देवता की पूजा है।

लेकिन देवता की मूर्ति तो खण्डित हो गई है, तब भी।

दिवू जी आप गल्ती पर हैं। देवता की मूर्ति कभी खण्डित नहीं होती, आस्था के ही टुकड़े होते हैं।

मूरत ही जब अशुद्ध होजाये तो किसी की आस्था क्यों न डगमगाएगी।

गीता बेचारी उन दोनों की प्रतीकात्मक लड़ाई टुकुर टुकुर देख रही थी। वह अभी तक समझे हुई थी कि सुबोध और नीता में आपसी मन-मुटाव पैदा हो गया है किन्तु इस वार्तालाप से ऐसा लगता था कि शायद कहीं इस मनमुटाव में तीसरा पक्ष भी है और तीसरा पक्ष कहीं उसके स्वयं को ...... और वह एक अबूझ भय की सिहरन से सिहर उठी। वह उनके मध्य चल रही नोक-झोंक में अपने को फंसाना नहीं चाहती थी। कमसे कम इस स्थान पर तो नहीं ही, किन्तु नीता ने उसे फंसा ही दिया।

कुंआरी

नीता ने गीता की ओर ताककर कहा– क्यों गीताजी मैं गलत तो नहीं कह रही ? दिवू श्री मूर्ति के आचरण के पक्षपाती है, जबकि आस्था तो अंतर्मन देखती है।

गीता को उत्तर देना ही पड़ा। उसने तीखा व संक्षिप्त उत्तर दिया– मूरत तो आस्था के लिए सहारा है। वह सहारा ही टूट गया तो आस्था की नींवें हिलनी ही चाहिए।

नीता ने सरोष निगाह लिए कहा– और कहीं आपकी आस्था की मूरत चटक गई हो तो क्या आपकी आस्था स्थिर रहेगी ?

दिवाकर सकपका कर रह गया। मोड़ नया पड़ गया।

इसे गीता और नीता दोनों ने नोट किया।

गीता बोली– मूर्ति का चटक जाना कोई बड़ी बात नहीं, उसके मूल बिम्ब सुरक्षित हों तो मूर्ति को फिर से जोड़ा जा सकता है।

नीता ने मुंह बिचका कर कहा– आपकी दलीलें अनुभव पर आधारित नहीं है, इसलिए उनमें न वज़न है न ठोस आधार।

गीता भी अपने वक्तव्य से सन्तुष्ट न थी, बात को घुमाकर उसने एक प्रकार से नीता ही का समर्थन किया था, लेकिन बात को गीता ने गिरने देना सीखा न था। वह इस समय सार्वजनिक स्थान पर थी। संस्कार युक्त मन उसे उलझने नहीं दे रहा था। उसने अध्यापन किया था और अध्यापन के क्षेत्र का व्यक्ति अपने तर्क को उल्टा सीधा करके प्रमाणित करने का प्रयास करता है और उसका आदी होता है। उसने लम्बी श्वास लेकर कहा– मैं बहस को लम्बा नहीं करना चाहती हूं।

इसका अर्थ है कि आप मुझसे सहमत हैं।

किसी की मजबूरी उसकी सहमति तो नहीं हो सकती।

यह एक सामान्य सा बहाना है। आप जैसी पढ़ी लिखी नारी यदि बहस से इस प्रकार भागे तो फिर पढ़े लिखे व बिना पढ़े में अन्तर ही क्या रहेगा।

गीता थोड़े तीखे लहजे में बोली– मैं व्यक्तिगत बहस का स्थान ऐसा सार्वजनिक स्थान नहीं समझती। हम यहां घूमने आए हैं न कि वकीलों और नेताओं की तरह बहस करने। आप घर आएं, आपका स्वागत है।

नीता ने आंखों में कड़ुवाहट घोल कर कहा– जो यहीं बहस से किनारा करता है, वह घर पर क्या करेगा ?

गीता ने उसी तीखेपन से उत्तर दिया– मैं ऐसे स्थान पर गम्भीर बहस को छिछोरापन समझती हूं।

नीता ने यह सुनकर सर्पिणी सा बन खाया। ओठों को दातों से भीच लिया। उसके सुन्दर रसीले गुलाबी ओठों पर दो दातों के निशान गहरे लाल रंग में उभर आए और उसके रूप में और भी वृद्धि कर वह तुनकना चाह कर भी तुनक न सकी, किन्तु बुझी बुझी सी उठी और दिवाकर की ओर रुख कर बोली–[अच्छा दिबूजी चलती हूं।

गीता को अपनी गलती का तुरन्त अहसास हो गया। वह तो साफ हृदय वाली थी। उसे क्या पता कि इस वार्तालाप का गूढ़ प्रयोजन क्या था? उसने उठ कर नीता का हाथ पकड़ लिया और क्षमा याचना के स्वरों में बोली· नीता जी मैं जल्दी ही तैश मे आ जाती हू। आशा है आप क्षमा करेंगी।

नीता ने एक गहरा निश्वास छोड़ा और बोली– दोष तुम्हारा नही गीता, दोष मेरा है। तुम्हे तो देवता सीधा सच्चा ही मिला है। तुम भाग्यशाली हो।

गीता ने उसी सन्दर्भ में कहा– नीता जी हम भारतीय नारियां हैं हमें अपनी मूर्ति के साथ ही आस्थावान बन कर जीना होता है। आपकी और मेरी बातों मे शब्द भेद हो सकता है, अर्थान्तर नहीं।

तुरन्त नीता के चेहरे पर एक चमक आई तथा दोनों ने अपने शब्दो पर ज्यों ज्यों गौर किया तो पाया कि वे बिना वजह ही लड़ रही थी। पहले मुस्कराई और फिर दोनों ही खिलखिला कर हस पड़ी।

दिवाकर भौंचक्का बना इस परिवर्तन को देखता रहा। अन्त मे नीता ने भी अपनी गलती मान कर क्षमा याचना की कि उसे भी बहस को सार्वजनिक स्थान पर नही छेड़ना चाहिए था। इसके कभी कभी भयंकर परिणाम निकल आते हैं।

नीता अपनी मजबूरी बता कर चली गई।

नीता के जाने के बाद, गीता ने जलती दृष्टि से दिवाकर की ओर देखा और कई सेकण्ड तक उसे निर्निमेष देखती रही। एक भयंकर बोझिल चुप्पी, इस जन संकुल स्थान पर भी उन दोनों के मध्य तैर आई शान्ति से गुजर जाने के बाद गीता ने निर्विकार दृष्टि से कहा चलिए हम भी अब चलें। यहां मन नही लगेगा।

दिवाकर ने निरीह दृष्टि से गीता को देखा, किन्तु रोष का आधिपत्य देख कर वह चुप रहा और उठ खड़ा हुआ।

नीता ने गीता की ओर ताककर कहा– क्यों गीताजी मैं गलत तो नहीं कह रही ? दिवू जी मूर्तिके आचरण के पक्षपाती हैं, जबकि आस्था तो अंतर्मन देखती है।

गीता को उत्तर देना ही पड़ा। उसने तीखा व संक्षिप्त उत्तर दिया– मूरत तो आस्था के लिए सहारा है। यह सहारा ही टूट गया तो आस्था की नीवें हिलनी ही चाहिए।

नीता ने सरोष निगाह लिए कहा– और कहीं आपकी आस्था की मूरत चटक गई हो तो क्या आपकी आस्था स्थिर रहेगी ?

दिवाकर भकपका कर रह गया। मोड़ नया पड़ गया।

इसे गीता और नीता दोनों ने नोट किया।

गीता बोली– मूर्ति का चटक जाना कोई बड़ी बात नहीं, उसके मूल बिम्ब सुरक्षित हों तो मूर्ति को फिर से जोड़ा जा सकता है।

नीता ने मुंह बिचका कर कहा– आपकी दलीलें अनुभव पर आधारित नहीं है, इसलिए उनमें न वजन है न ठोस आधार।

गीता भी अपने वक्तव्य से संतुष्ट न थी, बात को घुमाकर उसने एक प्रकार से नीता ही का समर्थन किया था, लेकिन बात को गीता ने गिरने देना सीखा न था। वह इस समय सार्वजनिक स्थान पर थी। सस्कार युक्त मन उसे उलझने नहीं दे रहा था। उसने अध्यापन किया था और अध्यापन के क्षेत्र का व्यक्ति अपने तर्क को उल्टा सीधा करके प्रमाणित करने का प्रयास करता है और उसका आदी होता है। उसने लम्बी श्वांस लेकर कहा– मैं बहस को लम्बा नहीं करना चाहती हूं।

इसका अर्थ है कि आप मुझसे सहमत हैं।

किसी को मजबूरी उसकी सहमति तो नहीं हो सकती।

यह एक सामान्य सा बहाना है। आप जैसी पढी लिखी नारी यदि बहस से इस प्रकार भागे तो फिर पढे लिखे व बिना पढे मे अंतर ही क्या रहेगा।

गीता थोड़े तीखे लहजे में बोली– मैं व्यक्तिगत बहस का स्थान ऐसा सार्वजनिक स्थान नहीं समझती। हम यहां घूमने आए हैं न कि वकीलों और नेताओं की तरह बहस करने। आप घर आएं, आपका स्वागत है।

नीता ने आंखों में कड़ुवाहट घोल कर कहा– जो यहीं बहस से किनारा करता है, वह घर पर क्या करेगा ?

गीता ने उसी तीखेपन से उत्तर दिया— मैं ऐसे स्थान पर गम्भीर बहस को छिछोरापन समझती हूं।

नीता ने यह सुनकर सर्पिणी सा बल खाया। ओठों को दातों से भींच लिया। उसके सुन्दर रसीले गुलाबी ओठों पर दो दातों के निशान गहरे लाल रंग में उभर आए और उसके रूप में और भी वृद्धि कर वह तुनकना चाह कर भी तुनक न सकी, किन्तु बुझी बुझी सी उठी और दिवाकर की ओर रुख कर बोली—[अच्छा दिवूजी चलती हूं।

गीता को अपनी गलती का तुरन्त अहसास हो गया। वह तो साफ हृदय वाली थी। उसे क्या पता कि इस वार्तालाप का गूढ़ प्रयोजन क्या था? उसने उठ कर नीता का हाथ पकड़ लिया और क्षमा याचना के स्वरों में बोली - नीता जी मैं जल्दी ही तैश में आ जाती हूं। आशा है आप क्षमा करेंगी।

नीता ने एक गहरा निश्वास छोड़ा और बोली— दोष तुम्हारा नहीं गीता, दोष मेरा है। तुम्हें तो देवता सीधा सच्चा ही मिला है। तुम भाग्यशाली हो।

गीता ने उसी सन्दर्भ में कहा— नीता जी हम भारतीय नारियां हैं हमें अपनी मूर्ति के साथ ही आस्थावान बन कर जीना होता है। आपकी और मेरी बातों में शब्द भेद हो सकता है, अर्थान्तर नहीं।

तुरन्त नीता के चेहरे पर एक चमक आई तथा दोनों ने अपने शब्दों पर ज्यों ज्यों गौर किया तो पाया कि वे बिना वजह ही लड़ रही थीं। पहले मुस्कराईं और फिर दोनों ही खिलखिला कर हंस पड़ीं।

दिवाकर भौंचक्का बना इस परिवर्तन को देखता रहा। अन्त में नीता ने भी अपनी गलती मान कर क्षमा याचना की कि उसे भी बहस को सार्वजनिक स्थान पर नहीं छेड़ना चाहिए था। इसके कभी कभी भयंकर परिणाम निकल आते हैं।

नीता अपनी मजबूरी बता कर चली गई।

नीता के जाने के बाद, गीता ने जलती दृष्टि से दिवाकर की ओर देखा और कई सेकण्ड तक उसे निर्निमेष देखती रही। एक भयंकर बोझिल चुप्पी, इस जन संकुल स्थान पर भी उन दोनों के मध्य तैर आई शान्ति से गुजर जाने के बाद गीता ने निर्विकार दृष्टि से कहा चलिए हम भी अब चलें। यहां मन नहीं लगेगा।

दिवाकर ने निरीह दृष्टि से गीता को देखा, किन्तु रोष का आधिपत्य देख कर वह चुप रहा और उठ खड़ा हुआ।

रात को गीता ने सीधा प्रश्न किया। वह अब दिवाकर से कम झिझकने लगी थी। नारी की जुबान एक बार बेलगाम हो जाय तो फिर काबू में कम आती है और कही साईस ढीला हुआ तो फिर लगाम का होना न होना सब बेकार होता है। इन दिनों गीता भी खुल गई थी–

आपका नीता से क्या सम्बन्ध है ?

दिवाकर कांप कर रह गया। परन्तु इस समय उत्तर देना ही था अतः वह भी उसी तीखे अन्दाज मे बोला– जैसा भी तुम समझो।

मुझे तो दाल मे काला नजर आता है।

साफ साफ कहो न।

यही कि आपके सम्बन्ध कही उससे गहरे हो गए हैं।

कैसे गहरे ?

प्रेमिका से......

जैसे कही गर्जना के साथ भयकर बिजली गिरी हो। दिवाकर एक दम सहम कर काला पड गया। फिर वह क्रोध से काप उठा, उसका हाथ गीता पर उठा, परन्तु उठा का उठा ही रह गया। यह उसके अन्तरमन के भाव का नग्न सत्य था, जहां वह भूले बिसरे नीता को प्रेमिका के रूप में देख लेता था। गीता की सच्चाई ने ही उसे मारने से रोका था। गीता ने भी दिवाकर का यह विकराल रूप देखा, वह भी सहम गई, किन्तु वह नारी थी। जो कांटा उसके चुभा था, उसकी पीर तो वही जानती थी। फिर नारी शूल को चुभाए रखना पसद नही करती, यह तो पुरुष ही होता है जो शूल का नासूर बना लेता है।

एक तीखा मौन दोनों के मध्य व्याप्त था। अचानक इस मौन को गीता की फूट पडी रुलाई ने तोडा। दिवाकर इसी की प्रतीक्षा मे था। वह जड़ बना कुछ समय तक बैठा रहा।

अचानक फूट पडा रुलाई का वेग भी अचानक ही रुक गया और सुबकते हुए गीता ने कहा– आप बोलते क्यो नही। बाग मे आपकी निगाहो मे जागी भूख को मैंने परखा है। पुन गीता की वाणी प्रखर हो गई।

दिवाकर ने अब कुछ भी छिपाना उचित न समझा, लेकिन वह उसे प्रतीकात्मक ढंग से ही समझाना चाहता था बोला– गीता पुरुषो पर आक्षेप स्त्रिया लगाती ही आई हैं। इसमे तुमने कोई नई बात नही की, लेकिन तुम जैसी पढी

लिखी, जो थोड़ा बहुत मनोविज्ञान का भी ज्ञान रखती हो, इस परिवर्तन का तर्क पूर्ण पोस्टमार्टम किए बिना, इस प्रकार फट पड़ेगी, इससे मेरे मन को बहुत ठेस पहुंची है।

तुम स्वयं निर्णय कर लेना कि मैं नीता का प्रेमी हूं या नीता मेरी प्रेमी है। फिर तुमने अपनी कमियां भी नहीं खोजी, जिनके विश्लेषण से तुम यह जान पाती कि यदि मेरा रुझान हुआ हो, तो क्यों कर ?

गीता नम्र स्वर मे बोली– लेकिन क्या मुझ मे कोई कमी आपने पाई ?

गीता तुमको सीधे रूप मे कहना तो बर्र के छत्ते मे हाथ देने के समान हैं। मैं तुम्हे बता रहा हूं कि एक पत्नि को क्या क्या होना चाहिए। तब समझ लेना कि तुममे खामी थी या मुझमें।

गीता एक पत्नि पति के लिए न केवल पत्नि ही होती है वरन् वह उसके लिए समय समय इन रिश्तों के से कार्य और स्नेह भी प्रदान करती है उसे बहिन, मा, अनुभवी सलाहकार, सच्चा मित्र और वेश्या. .

.... क्या ? अनायास ही गीता के मुख मे निकल पड़ा। वह वेश्या के नाम मे चौंकी थी, बोली सलाहकर, मित्र का रूप तो समझ में आया, किन्तु आपने उसे पति की मा बहिन कैसे बना दिया और फिर उसे वेश्या भी . ...

सुनो– मां का पवित्र स्नेह उसे पति को भोजन कराते समय, रोग में और निराशा काल मे, पति पर बिखेरना चाहिए। बहिन का निष्कपट स्नेह उसे जब पति को प्रदान करना चाहिए, जब उसे बलिदानी स्नेह की आवश्यकता हो। अपने को नष्ट कर भाई को जीवित रखने की सी भावना भी पति के प्रति पत्नि मे रहनी चाहिए। वेश्या उसे रतिकाल में बनना चाहिए, जिससे उसका पुरुष जो भंवरा प्रकृति का होता है उसी मे लिपटा रहे लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि वह उसे कर्मक्षेत्र मे हटा दे। नारी का आकर्षण ही तो उसे बांधे रहता है। इसलिए पत्नि को रतिकाल में हर प्रकार से वेश्या के समान अपनी ओर आकर्षित रखना चाहिए।

कुछ देर शांत रह कर वह बोली– यह तो ठीक है मुझमे इनमें से बहुत क्या हैं या होंगी। हां नीता का अंग प्रदर्शन पर अपना अधिकार है, वह कुछ भी करे। पुरुष उसकी ओर देखने को बाध्य हो जाता है, किन्तु आपका झुकाव उसकी ओर इतना क्यों है ? आप इतने क्यों बदले ? जब कि आप स्वय ही कहा करते थे कि पुरुष तो गम्भीर सागर है।

गीता, मैं अधिक गहराई में जाकर तो तुम्हे बताऊंगा नहीं। इतना समझ लो कि हर प्राणी अपने वर्तमान से खुश नही है। वह छटपटा रहा है कुछ नए के लिए और नया बनना उसके संस्कारों पर आधारित है।

मैं समझी नहीं। गीता ने शंका की।

गीता समझना भी नही, नही तो जीवन दूभर हो जायेगा। जब यह समझ जागती है तो फिर प्रतिपल मनुष्य गिरगिट बना फिरता है। यही भूख सुबोध और नीता के मध्य जागी थी।

आप भी तो थोड़ा जगे हैं, गीता ने थोडा विहस कर कहा।

शायद। और दिवाकर ने चर्चा को आगे गोल ही रखना उचित समझा।

गीता ने फिर कुछ बोलने के लिए मुह खोला तो दिवाकर ने उसे रोकते हुए कहा– बस गीता मैं इससे अधिक कुछ भी स्पष्ट नही कर सकता। समय ही इन रहस्यमय गुत्थियो को सुलझाएगा।

गीता ने भी क्षमा याचना की दृष्टि से दिवाकर की ओर ताका और दिवाकर ने भी क्षमा किया ऐसा भाव प्रदर्शन कर गीता को अपने अंकमें भरलिया।

१०

सर्दी की अलसाती एक सुबह में, कुछ दिन बाद ही सुबोध ने दिवाकर को आ जगाया। इस समय तक न तो गीता ही उठी थी न मां ही। बाहर की सर्दी से सुबोध यदाकदा कांप जाता था। उसने जो समाचार दिए, वे इतने भयानक थे कि दिवाकर इस सर्दी मे भी अपनी पेशानी पर पसीना अनुभव करने लगा।

दिवाकर अंदर आया तो उसने देखा कि गीता बड़े बेढगे रूप मे सो रही थी। यह उसके यज्ञ की पूर्णाहुति थी। उसने एक मार्मिक दृष्टि से उसे देखा और कमरे से जितना धन वह एकत्रित कर सकता था, किया, कपड़े पहिने और बाहर निकल आया।

सुबोध के मकान पर जैसे मनहूसियत साकार हो उठी थी। श्यामा बुझा-बुझा सा बैठा था। आंखो में लाल डोरे चमक रहे थे, जैसे वह सारी रात रोया हो। दिवाकर ने उडती हुई निगाहों से देखा और सुबोध के कान मे कोई बात कही।

वह वहीं शौचादि से निवृत्त हुआ। नहाकर जब वह चलने लगा तो सुबोध ने उसे एक मोटा सा लिफाफा देना चाहा, जिसे दिवाकर ने आखो ही आखो मे घुडकते हुए लौटा लेने के लिए इशारा किया।

११

सुबह जब सूर्यवती उठी तो दिवाकर का कमरा खाली देखकर ठिठकी परन्तु यह सोच कर कि शायद दिवाकर जल्दी ही उठकर घूमने चला गया है, चुप रही, लेकिन दिवाकर जब गीता के उठने के समय तक भी लौट कर नही आया तो वह शंकित हो उठी,लेकिन फिर भी उनकी दैनिक दिनचर्या मे कोई अंतर नही आया।

लेकिन दिवाकर को न आना था सो साझ तक न आया।

दोनो सास बहू अब चिंतित हो गई कि आज तक तो दिवाकर बिना कहे कहीं इस प्रकार गया नही। फिर आज कहा चला गया। दिन में उसके कार्यालय से भी पूछने का ध्यान न रहा।

सूर्यवती उसी समय दिवाकर के अधिकारी के घर चली गईं। वहा भी अधिकारी से पूछने पर उत्तर मिला कि वह तो आज कार्यालय आया ही नही। न उसने किसी प्रकार का प्रार्थना-पत्र भिजवाया है जबकि ऐसा कभी नही हुआ। वे स्वयं चिंतित थे।

दिवाकर के अधिकारी बडी ही शात प्रकृति के व्यक्ति थे। अनुभव की रेखाएँ एक एक कर उनके मुख पर घनी हो गई थी। सेवानिवृत्ति का समय भी निकट था इसलिए अब वे अधिक गम्भीर हो गए थे, दिवाकर के बारे मे उनके विचार बड़े संतुलित और सुलझे हुए थे वे उसे उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक और परिश्रमी युवक मानते थे। वे भी चिंताकुल स्वर मे पुनः बोले- वह इस प्रकार कभी

नहीं जाता था। लगता है उसके इस प्रकार जाने में कोई भयंकर बात है। आप घर जाकर उसकी पत्नि से तो पूछिए।

सूर्यवती कुछ कहना चाह ही रही थी कि उसने अपने को रोक लिया और अनमने ढग से उठकर चली आई।

घर पर गीता से ही उन्होंने आकर पूछा- बहू कहीं तुममें कोई अनबन तो नहीं हो गई।

गीता ने आश्चर्य चकित हो कर कहा- झगड़ा, ऐसी बात कैसे हो सकती है। आजकल तो वे बहुत ही सौम्य व शांत रहते हैं। मुझे कभी कभी क्रोध न करने की सलाह देते रहते हैं।

सूर्यवती छत की ओर ताकने लगीं। रात घिर आई थी। वे पुनः जाने के लिए उठीं तो गीता ने रोक कर कहा- इस समय आप बाहर न जायें, सर्दी विकट पड रही है। कहीं सर्दी लग गई तो लेने के देने पड जायेंगे। वे किसी कार्यवश ही बाहर चले गए हैं, आते ही होंगे।

सूर्यवती को आशा जागी वह बोली- जा उनके कमरे में देख। शायद वह कुछ सूचना लिख कर रख गया हो। फिर वे कपाल पर हाथ मार कर बोली,निगोडी नींद भी आज गहरी आई। वरना जब घण्टी टनटनाई थी, तभी उठ जाती तो सब समझ मे आ जाता।

गीता ने कमरे की सामान्य,असामान्य सभी जगह देख डालीं, किन्तु कुछभी न मिला। हां जो दिवाकर की आलमारी में दो सौ से ऊपर धन रखा था। वह नहीं था। अब गीता का माथा ठनका कहीं वे लम्बे तो नहीं निकल गए। वह जड बनी सोचने लगी। पिछले वर्ष की सारी घटनाएं चलचित्र की भांति उसके सामने गुजरने लगी। वह ज्यों ज्यों इस विचारणा में उलझती गई। उसको स्वयं पर ही ग्लानि आती चली गई। पंजोर की घटना ने उसे विश्वास दिला दिया कि हो न हो वे गीता इससे आगे वह सोच नहीं सकी कि उसकी आंखों के आगे अंधियारी छा गई। वह गिरने ही वाली थी कि अन्दर आती हुई सूर्यवती ने उसे सम्हाल लिया।

गीता अधिक देर बेहोश न रही। पडोस में ही डॉक्टर रहते थे, सूर्यवती की आवाज पर वे तुरन्त चले आए। गीता के ठीक होने पर वे निर्देश दे गए कि उससे अधिक बातें न की जायें। इसको कोई हल्का सा सदमा लगा है, साथ में यह कमजोर है ही।

गीता फटी-फटी निगाहों से छत को घूरती रही उस रात सूर्यवती भी न सो सकी। सुबह शीघ्र ही जब वे उठकर चलने लगीं तो गीता ने अवरुद्ध कण्ठ से पूछा– कहा जा रही है ?

सूर्यवती चलते चलते बोली– मैं सुबोध के घर जा रही हूं।

बुझे स्वर में गीता बोली– आपको वहा से भी निराश लौटना पड़ेगा।

अब तक सूर्यवती बाहर निकल चुकी थी। शब्द उनके कानो में पड़ चुके थे, किन्तु वे रुकी नही।

सुबोध के घर पर तो आलम ही और था। न वहा सुबोध था, न नीता और न दिवाकर ही। प्रायः सभी कमरो पर ताले लगे हुए थे। केवल वहां श्यामा मौजूद था। श्यामा का हाल बुरा था। वह अधबूढ़ा जो इस घर मे सदैव हसी-खुशी का वातावरण ही देखता आया था, आज वहा की अवस्था और मुर्दनी से अधमरा हो गया था। वह कहीं बहुत बुरी तरह से टूट गया था।

सूर्यवती ने उसी से पूछा– यह मैं क्या देख रही हूं।

और श्यामा की थोड़े समय से रुकी रुलाई फूट पडी। वह रुलाई के मध्य ही बोला– कल बहुत ही......सुबह ... दिवाकर साहब आए थे। मालिक ही शायद उन्हे लिवाकर लाए थे। फिर नहा धोकर न जाने कहा चले गए। मालिक बाबू सारा घर बन्द कर गए हैं और मुझे कह गए हैं कि जब तक हममे से कोई न लौटे तब तक यही रहना।

सूर्यवती ने गम्भीर होकर कहा– दोनो मे से किसी ने, किसी स्थान का नाम बताया।

किसी ने नही बताया। श्यामा रुआंसे स्वर में बोला– किन्तु लगता है कि दिवाकर बाबू दिल्ली की ओर गए हैं और मालिक शायद शिमला की ओर ...

शिमला की ओर...क्यो ? सूर्यवती ने शंका की।

अरे आपको पता नही। शिमला में एक दूर के रिश्ते की बिटिया की मौसी रहती हैं।

अरे तो क्या नीता भी कही बाहर गई हुई है।

जी ......ई......ई... ...। जैसे श्यामा फिर रो पडेगा ऐसे स्वर मे बोला– बिटिया का तो परसों से ही पता नही है। पता नहीं वो कहां चली गई है

और आखो मे तैर आई नमी को श्यामा ने अपने कुर्ते की बाजू में पोंछा। सूर्यवती फिर वहा नही रुकी और तीर की सी तेजी से निकल गई।

हाफती हुई घर पहुंची तो गीता को जारजार रोती हुई पाया। वे तीखे शब्दों में बोली– मूर्खा इसमें रोने की क्या बात है ? अपने को संयत करके रख। सुबोध और नीना के मध्य कोई बडा मन मुटाव हो गया है। उसे सुलझाने ही वह गया है। मैं दिल्ली जाती हू तू सम्हल कर रहना।

दिल्ली का नाम सुनकर गीता खडी हो गई और रुंधे गले में बोली– मैं भी चलूगी।

सूर्यवती ने उसे झिडका तो गीता ने उनके पैर पकड लिए और कातर स्वर में बोली– मैं जरूर चलूगी।

सूर्यवती गीता का दृढ निश्चय टाल न सकीं।

१२

दिवाकर बारह बजे तक दिल्ली आ गया। वह आ तो गया, किन्तु नीता को इस महानगरी मे ढूढे कहा ? फिर रह रह कर एक शका उसके मन मे कौंध जाती थी कि कही उसने आत्म... और वह इससे आगे की कल्पना नही कर पाता। एक झुरझुरी उसकी रीढ मे रेंग जाती। दिवाकर की आखो के आगे नीता का आमन्त्रण देता, घृणा और प्रेम के झूले पर झूलता, मुखड़ा नाच उठता। वह माथा थाम कर रह जाता।

दिवाकर ने फिर भी साहस नही छोड़ा। यह तो उसे पता ही था कि नीता यदि कहीं ठहरी होगी तो किसी अच्छे होटल मे ही चाहे वह बड़ा न हो, हो शात व अच्छा। वह अपने को बदल रही थी, किन्तु अच्छी वस्तुओ के प्रति उसका रुझान अभी मिटा न था। इसलिए उसने अपने एक साथी मिस्टर वर्मा से सम्पर्क स्थापित कर पूछा कि क्या वह उसे अपने कार्यालय मे टेलीफोन की सुविधा प्रदान

करवा सकता है। उसे इच्छित उत्तर मिला। मित्र का गर्मागर्म आमन्त्रण भी। वह सीधा मित्र के कार्यालय पहुंचा। उसका मित्र जन सम्पर्क कार्यालय में एक किसी विशिष्ट पद पर था। जाते ही उसने कहा- पहले मुझे टेलीफोन और टेलीफोन डायरेक्ट्री दिलवाओ।

भौचक्का सा वर्मा दिवाकर का मुंह देख रहा था। दिवाकर के चेहरे पर हवाइयां उड़ रहीं थी, इससे वह उद्वेलित हो गया, लेकिन उसके तेवर देख कर सहम गया। टेलीफोन व डायरेक्ट्री उसके हवाले करते हुए वर्मा बोला- मैं घर जाकर तुम्हारी भाभी को सूचना दूं कि दिवाकर आया है जिससे तुम्हारी पेट-पूजा का प्रबन्ध हो। वह जाते जाते चपरासी से कह गया कि जब तक ये साहब न कहें अन्दर किसी को मत जाने देना।

दो घण्टे के लगातार प्रयत्न के बाद दिवाकर अपने प्रयत्न में सफल हो गया। नई दिल्ली के एक बहुत ही साधारण होटल में उसे नीता का पता मिल गया।

जैसे उसके सर से एक बोझ उतर गया हो। उसने लगे हाथों ही सुबोध को शिमला ट्रंक कॉल कर दिया। उसे सूचना दी कि वह यथाशीघ्र चला आये। इसी सब में उसे चार बज गए।

जब वह बाहर आया तो पाया कि वर्मा बैठा बैठा बोर हो रहा था। अब उसके मुख पर प्रफुल्लता देख कर वह आश्वस्त हुआ।

दोनों मित्र अब मिले, जैसे पहले मिले ही न थे और फिर बातों की बाढ़ में बह गए।

सांझ को खाना खाकर दिवाकर उस होटल की ओर चला गया। वर्मा से कह गया कि आया तो जल्दी लौटूंगा अन्यथा नहीं ही।

सांझ के झुटपुटे में ही वह होटल पहुंच गया। होटल थी तो सामान्य ही किन्तु बड़े ही शांत एकांत स्थान पर थी। दिल्ली का शोर शराबा वहां अधिक नहीं था। काउण्टर पर एक पकी उम्र की महिला बैठी थी। उसी से नीता का कमरा उसने पूछा। उसने दूसरी मंजिल के कोने वाले कमरे का नाम लिया।

कमरे का द्वार उढका हुआ था। दिवाकर ने नीता को चौंका देने की दृष्टि से एक दम भड़ाक से दरवाजा खोल दिया। नीता द्वार की ओर पीठ किए बैठी थी। वह न चौंकी ही न मुड़ी ही। दिवाकर सकपका कर खड़ा रह गया। उसे नीता से यह आशा न थी। तुरन्त ही एक विचार तेजी से उसके मस्तिष्क में कौंधा- कहीं नीता ने कुछ कर तो नहीं लिया, परन्तु तुरन्त ही उसके विचार को बाधा पहुंची।

नीता ने गम्भीर वाणी मे कहा– दिवू ! यम फँसे गए, आओ मैं तो दो दिन मे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। तुम मुझे चौंकाना चाहते थे। यह कहते हुए घूम गई।

दिवाकर की आंखें नीता की वेशभूषा देखकर दंग रह गईं। हालांकि कपड़े स्वच्छ सफेद थे, परन्तु पहनने का ढग बडा ही अपीलिंग था। श्वेत वस्त्रो में नीता ने सेक्स-अपील को बडे तीखे अन्दाज में पैदा किया था।

दिवाकर महाशय ठगे से खड़े रह गए।

नीता मुस्कुरा कर बोली– क्या घूर-घूर कर देख रहे हैं। आप लौटाने आए है मुझे, तो बैठिए तो सही।

दिवाकर झिझकता सा पास की खाट पर बैठ गया। वह नीता से इतना अभिभूत हो गया था कि वह बोल भी न सका।

मौन मानों असहाय बना लटक गया हो।

धीरे धीरे दिवाकर ने अपने को संयत किया। वह बहुत धीरे से बोला– नीता क्या मुझसे तुम कुछ बात कर सकोगी ?

नीता बोली– बात जरूर करूंगी। कुछ नहीं बहुत सारी, परन्तु पहले यह बताइये कि आपके पास समय भी है या नही ?

दिवाकर बोला– समय तो है, किन्तु......

किन्तु, परन्तु कुछ नही। घबराइये नहीं, एक अलग कमरा भी आपके लिए ले लिया है। पहले आप खाना आदि खा लीजिए, फिर थोड़ा विश्राम कीजिए, इसके उपरांत बातें होंगी।

दिवाकर नीता के इस बदले हुए सम्बोधन से चौंका, फिर मुस्करा दिया, बोला– खाना तो खाकर आया हूं, इसके लिए तकल्लुफ न करें।

नीता बिना कुछ कहे नीचे चली गई।

लगभग पांच मिनिट मे नीता वापस आ गई। उसने आते ही दिवाकर को आदेश दिया कि वह कपडे बदल कर, आराम से कम्बल ओढ कर बैठे, सर्दी जोरों से पड़ने लगी है।

दिवाकर हंस दिया, बोला– आप तो इस प्रकार आदेश दे रही हैं, जैसे आप अपने घर मे बैठी हों या मैं अपने घर में बैठा होऊं।

नीता हंस कर बोली– मैं ठीक कह रही हूं। आपने जो गर्म कपड़े पहने है, उन्हे तो उतारेंगे ही।

हारकर दिवाकर ने अपनी जाकेट उतारी मफलर को खोल कर रखा तथा कम्बल को अच्छी तरह से पैरों पर लपेट कर बैठ गया। नीता भी उसी खाट पर, उसी कम्बल के दूसरे सिरे मे पैर लपेट कर बैठ गई।

दिवाकर को बड़ा बुरा लगा। वह भयभीत निगाहों से नीता को देखने लगा। नीता ने प्रत्युत्तर में मुस्कुरा कर कहा- घबरा क्यो गए आप। क्या मैं कोई हिंस्र पशु हूं?

दिवाकर कुछ बोला नही, एक ओर सिमिट सा गया। वह विचारता हुआ द्वार की ओर देखने लगा, जैसे कि वह बुरा फंस गया हो।

नीता ने उसके और अधिक निकट आते हुए कहा- आप बहुत घबरा रहे हैं। खाना खाने के बाद अपने कमरे में विश्राम कर सकते है। द्वार की ओर देख कर न झिझकिए। कोई आप पर उंगली भी नही उठा सकता, सुबोध भी नही।

क्या मतलब? दिवाकर चौका क्योंकि 'सुबोध भी नहीं' पर विशेष व्यंग्यात्मक भार दिया था नीता ने।

अरे आपको सुबोध ने नहीं बताया।

नहीं तो।

ओह। और नीता कुछ देर के लिए गम्भीर हो गई, फिर बोली- खैर सुबोध आप पर अविश्वास कर सकते है, मैं नही।

आखिर बात क्या है? दिवाकर अपनी उत्सुकताको नही रोक सका।

मेरे और सुबोध के मध्य तलाक हो गया है।

जैसे कोई भयंकर बम फटा हो, ऐसे चौक कर दिवाकर एक ओर सरका और गिरते गिरते बचा। फिर सम्हल कर बोला आखिर कब?

बड़े ही सहज स्वर में नीता बोली एक सप्ताह पूर्व ही तो।

दिवाकर नीता के इतने सहज स्वर से चौका। इतना बड़ा काण्ड हो गया और नीता इतनी सहज है कि वह इसकी कल्पना भी नही कर पा रहा था। उसने फिर पूछा- फिर तुम घर छोड़ कर क्यो आई? वह तो तुम्हारी निजी सम्पत्ति था।

हंस कर नीता बोली- आप क्या समझते हैं कि मैं सुबोध को दर दर का भिखारी बना देती।

मैं यह नही कहता। उसका अपना अलग व्यापार हो गया है, तुम्हारा अलग, वह तो घर किराये पर भी ले सकता था।

नीता ने जलती निगाहों से दिवाकर को देखा और बोली– वे मुझे न चाहें, आखिर ये तो मेरे पति ही। इतनी क्रूर तो मैं नहीं हो सकती।

फिर गलत समझी। मैं क्रूर बनने की बात नहीं करता। प्रश्न है तुम्हारे वहां से अचानक पलायन का ?

मैं उस वातावरण में नहीं रह सकती थी जबकि सुबोध वहां टिके हुए थे।

अब दिवाकर की समझ में आया कि सुबोध की बेशर्मी अधिक थी। वह बोला– लेकिन तलाक लिया क्यों और किसने लिया।

सुबोध ने लिया, लिया इसलिए कि आपका निर्देश था।

दिवाकर के काटो तो खून नहीं। अब उसे लगा कि उसके पत्र का परिणाम है यह जो अब सामने आया है। बोला– आप दोनों ने मेरे पत्र का गलत अर्थ लगाया।

दोनों ने नहीं, केवल सुबोध ने।

दिवाकर ने एक ठण्डी श्वास खींची और सर झुकाकर बैठ गया।

इतने में बेयरा खाना ले आया।

नीता सभी कुछ भूलकर बोली– अच्छा अब मनहूसियत छोड़िये खाना खाइये। तलाक हुआ चलो बला टली। राजीनामा होना हो तो भी बला टले। खाना तो खा ही लेना चाहिए, आइये और नीता ने दिवाकर को झंझोड़ दिया।

बेयरा दुबारा आया था, पूछने लगा– क्या एक जगह और खाना लगा कर लाऊं।

नीता ने सख्त स्वर में कहा– मैंने एक ही थाल के लिए कहा था, तब सुना नहीं था क्या। जाओ पानी और सब्जियों का प्रबंध अलग अलग कर लाओ।

दिवाकर रुखेपन से बोला– नीता मैं खाना खाकर आया हूं, विश्वास करो।

नहीं, खाना तो खाना ही होगा, चाहे खाकर आए हो या नहीं।

नीता मानो, खाकर चला हूं।

तो इसका मतलब कि मुझे भी भूखा रहना होगा। लीजिए मैं भी नहीं खाती। नीता रूठी सी बैठ गयी।

दिवाकर बोला– ओह आप बहुत जिद्दी हैं। मैं खाकर आया हूं। फिर भी आप मेरे कहे का विश्वास नहीं कर रही। चलिए उठिए, खाना खा लीजिए।

नही मैं नही खाऊंगी, जब तक आप न खायेंगे।

अच्छा बाबा तुम्हारा साथ दे दूंगा। चलो एक प्लेट अलग से मगवा लो।

तो क्या मैं अछूत हूं जो अलग से प्लेट मगवा लूं। मेरे साथ नही खाना हो तो, वैसे कहिए फिर साथ खाया भी तो है।

भई, नीताजी तब बात और थी, तब सुबोध रहता था।

तो क्या अब सुबोध के न रहने से मैं अछूत हो गई हूं।

हार कर वह उसी के साथ खाना खाने बैठ गया।

खाने के बाद बहुत देर तक बातें होती रही। सुबोध के तलाक से नीता खुश भी थी और नही भी थी। वह अपने को मुक्त अनुभव कर रही थी। बातो ही बातों में वह बहुत खुल गई। दिवाकर से सटकर ही बैठी रही। कभी उसके कधे पर सर रख देती कभी बड़ी प्यासी निगाहों से देखती।

दिवाकर का सोया साप अपनी गुंजलक मे ऐंठ रहा था, तन रहा था, लेकिन सामाजिक बंधन उसे बांधे रहे वरना वह भी तो दमित इच्छाओं और ओढ़ी हुई शराफत का सामान्य सा इंसान था।

बातों का तोड इस बात पर आया कि यदि सुबोध उससे पुनः सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं और साथ रखना चाहते है तो उस पर शक और बधन न लगाए जायें।

दिवाकर इसमे खुश ही हुआ कि चलो उसे अपने प्रयत्न मे सफलता तो मिली। उसने उठते हुए कहा– अच्छा अब मेरा कमरा तो दिखाओ। फिर सुबह चलने का कार्यक्रम बनायेंगे।

नीता ने दिवाकर का हाथ थाम लिया। बडी निरीह भूखी और प्यासी निगाहों से उसे वह ताकती रही। उसकी आखों में इतना विकल आमंत्रण था कि दिवाकर हिल हिल गया। वह नीता के हाथ के खिचाव के साथ थोड़ा खिचा भी, फिर न जाने कौन सी शक्ति ने उसे झटका दिया। वह तन कर सीधा हो गया।

नीता जैसे कही टूट गई, बोली नही।

दिवाकर जब द्वार पर पहुंचा तो वह जैसे सोते से जागी और बाहर आकर दिवाकर को उसके कमरे की ओर इशारा कर दिया।

वह अब अलग खड़ी थी, ग्लानि मिश्रित बुझापन लिए।

सारी रात दोनों कमरो में नींद पर जागरण का पहरा बना रहा।

सुबह दिवाकर उठा और शौचादि से निवृत्त होकर नीता के कमरे में गया तो पाया कि उसके कमरे के द्वार उढ़के हुए हैं। वह चुपचाप अंदर चला गया। नीता बड़े ही बेढंगेपन से सो रही थी। कम्बल से एक पैर जंघाओं तक नग्न बाहर निकला हुआ था।

दिवाकर बाहर चला आया। उसने एक तार अपने कार्यालय को दो दिन की छुट्टी बढ़ाने के लिए दिया, फिर वह वर्मा के घर की ओर निकल गया। वहीं पर उसे दस बज गए।

लौट कर आया तो नीता सामान्य सी सूती धोती में भी शोला बनी हुई थी। वह उसे देखकर दहल गया।

भोजन के लिए नीता ने जब कहा तो दिवाकर बोला खा लिया जायेगा।

नीता आमंत्रण की एक कसकती चितवन डाल कर नीचे चली गई।

दोनों ने आज भी साथ साथ खाना खाया, चुहुल भी चलती रही और नीता का दिवाकर को बार बार छूना भी।

दिवाकर आकुल होता रहा, अपने को जब्त करता रहा।

इसी में ग्यारह बज गए।

वे दोनों बातें करते रहे, सुबोध की नासमझी की, सामाजिक बंधनों की।

द्वार उढ़का हुआ था।

नीता बेहद खुल रही थी।

फिर अचानक दिवाकर बोला—अच्छा नीता मैं समझता हूं कि सुबोध आने ही वाला होगा। वह खड़ा हो गया। उसने अपनी जाकेट कंधों में डाली तो बटन लगाने नीता खड़ी हो गई। वह दिवाकर से सटकर इस प्रकार खड़ी हुई कि उसके उरोजों की गोलाइयां उससे सट गईं। बड़ी प्यासी निगाहों से उसने दिवाकर को देखा। दिवाकर अपने को जब्त न कर सका। उसने नीता के उत्तप्त रसीले ओठों पर अपने उष्ण ओंठ रख ही दिए। कुछ देर वे शांत खड़े रहे। फिर छिटक कर नीता अलग हो गई, लेकिन दिवाकर का सोया हुआ शैतान तो अब जाग उठा था। उसने अलग होती हुई नीता को अपने अंक में पुनः समेटने के लिए, उसे दबोच लिया और ताबड़ तोड़ चार पांच विकल चुम्बन नीता के कपोलों पर उसने अंकित कर दिए कि तभी बिजली की सी गति से दो काम एक साथ हुए।

एक करारा तमाचा नीता का दिवाकर के मुंह पर पड़ा और दूसरा सुबोध ने उसी समय दरवाजा खोला और खोलने के साथ ही लौट गया।

दिवाकर जड़ बना ताकता रहा, फिर वह ज्यों ही चलने को मुड़ा कि उसे द्वार पर गीता और मां नजर आईं।

वह पल भर को तो झिझका फिर एक झपाटे के साथ द्वार से निकल गया।

गीता और सूर्यवती ने एक जलती हुई निगाह नीता पर डाली और नीचे की ओर लपक गईं।

नीता सहमे कदमों से बरामदे में आई तो उसने मुख्य द्वार से सुबोध को, फिर दिवाकर को और फिर तेजी से गीता और सूर्यवती को द्वार से जाते हुए देखा। वह इतनी जड़ बन गई कि कुछ बोल भी न सकी।

वह उस रिक्त द्वार को कुछ इस प्रकार घूरती रह गई जैसे वह स्वयं एक कुंआरी नगी सलीब हो और उसके मसीहे उसे दिखाकर ही लौटा लिए गए हों।
